नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक अखबार • वर्ष 7 अंक 9 (संयुक्तांक)
जनवरी-फरवरी 2006 • 5 रुपये • 16 पृष्ठ

नये वर्ष में मज़दूर वर्ग के हिरावलों का आह्वान

मज़दूर वर्ग की सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण की कोशिशें तेज करो

सम्पादक

एक और नया साल मेहनतकशों और उनके हिरावलों के लिये इसके सिवा क्या मायने रखता है कि हम अपने सामने खड़ी चुनौतियों-समस्याओं की चर्चा करें, अपने लक्ष्यों और कार्यभारों को याद करें और एक बार फिर नये संकल्प लें।

सबसे पहले बीते साल के मध्य की उस घटना की चर्चा करें जिसने हमारे लिए कुछ महत्वपूर्ण भविष्य-संकेत दिये थे। गुड़गाँव में 'होण्डा मोटरसाइकिल एण्ड स्कूटर्स इण्डिया' के हड़ताली मज़दूरों पर बर्बर पुलिसिया हमले और वहशियाना जुल्म की घटना। इस घटना ने यह महत्वपूर्ण पूर्व संकेत दिया था कि आने वाले दिनों में सत्ता मज़दूर प्रतिरोध का सामना किस रूप में करेगी। छँटनी-तालाबदी-ठेकाकरण, काम के घण्टों में मनमानी बढ़ोत्तरी आदि के खिलाफ यहाँ-वहाँ जब मज़दूर प्रतिरोध के लिये उठ खड़े होंगे तो सत्ता पूरी तरह देशी-विदेशी कारखानेदारों के पक्ष में खड़ी होकर अपने दमन तंत्र का खुले हाथों इस्तेमाल करेगी। नया साल शुरू होते ही इसकी एक और बानगी भी सामने आ गयी। 2 जनवरी को उड़ीसा के कलिंगनगर में टाटा घराने के एक इस्पात संयंत्र की स्थापना का विरोध कर रहे आदिवासियों पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलायी गयीं जिसमें सरकारी सूत्रों के अनुसार सात लोग मारे गये। गैरसरकारी सूत्रों के अनुसार मरने वालों की संख्या एक दर्जन है। यह घटना भी यही दर्शाती है कि उदारीकरण के दौर की अर्थनीति को लागू करने के लिये निरंकुश सत्ता का होना और रहे-सहे पूँजीवादी जनवाद का छीजते चले जाना लाजिमी है। जब पश्चिम के विकसित पूँजीवादी देशों के भीतर पूँजीवादी जनवाद के चीथड़े उड़ रहे हों तो भारत जैसे पिछड़े पूँजीवाद की क्या बिसात। भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर ने सदियों पुरानी इस छुपी हुई सच्चाई को एकदम बेपर्दा कर दिया है कि पूँजीवादी व्यवस्था में सरकार पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी से अधिक कुछ नहीं होती।

और बीते साल में देश में पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी के रूप में संप्रग सरकार ने भूमण्डीकरण के एजेण्डे को पूरी कुशलता के साथ आगे बढ़ाया है। यह सरकार सस्ते श्रम और और मुनाफे की लूट के लिए कई नये क्षेत्रों को देशी-विदेशी पूँजी के लिये खोलने और अनेकानेक नयी रियायतें देने के साथ ही ईपीएफ ब्याज दरों में कटौती और नई पेंशन स्कीम के जरिये समाज की मध्यवर्गीय जमातों तक की जेबों पर हाथ डाल कर भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ा रही है। अब इस प्रक्रिया की सबसे बड़ी रुकावट को दूर करने का मन भी सरकार बना चुकी है—मौजूदा श्रम कानूनों में बदलाव करना। इसकी माँग देशी-विदेशी पूँजीपति लम्बे समय से करते आ रहे हैं लेकिन मज़दूर वर्ग के विरोध के कारण सरकारें अब तक हिचकती रही हैं। अब यह मौजूदा सरकार की प्राथमिकता सूची में सबसे ऊपर आ गया है क्योंकि उसके आकाओं ने इस मुद्दे पर जबर्दस्त दबाव बना दिया है।

> *मेहनतकश साथियो! नौजवान दोस्तो!*
> **सोचो!**
> **58 सालों तक**
> **चुनावी मदारियों से**
> **उम्मीदें पालने के बजाय**
> **यदि हमने इन्कलाब की राह**
> **चुनी होती**
> **तो भगतसिंह के सपनों का भारत**
> **आज एक हकीकत होता।**
> ***चुनावी मदारियों से पीछा छुड़ा लो***
> ***समाजवादी क्रान्ति की राह अपना लो!***

पूँजीपतियों की इस मैनेजिंग कमेटी को सरकारी वामपन्थी बेशकीमती मदद दे रहे हैं। साम्प्रदायिक ताकतों को सत्ता में पहुँचने से रोकने के नाम पर वे संप्रग सरकार के हर कदम को समर्थन दिये चले जा रहे हैं। अपने सामाजिक आधारों को बचाने की चिन्ता से बीच-बीच में वे कुछ दिखावटी विरोध करते हैं, सरकार को गीदड़-भभकियाँ देते हैं, लेकिन फिर मनमोहन सिंह और सोनिया जी से बातचीत के बाद सहमत हो जाते हैं और सरकार को समर्थन जारी रखने का आश्वासन दुहरा देते हैं। इन कथित वामपन्थी संसदीय पतुरियाओं ने इतनी निर्लज्जता से बीते साल में खुद को उघाड़ किया है कि मेहनतकश जनता के दिलों में इनके लिये बची-खुची इज्जत भी जाती रही है।

इसके साथ ही बीते साल में देश में निठल्ली बहसबाजी के राष्ट्रीय अड्डे (जिसे संसद कहा जाता है) की पहले से ही धूल-धूसरित गरिमा मैले की टंकी में चभर-चभर करती नजर आयी। सात माननीय सांसदों को एक न्यूज चैनल ने अपने स्टिंग आपरेशन के जरिये संसद में सवाल पूछने के एवज में घूस लेते दिखाया। संसद ने अपनी गरिमा बहाल करने की मजाकिया कवायद करते हुए इन 'माननीयों' को संसद से निलम्बित कर दिया। इस कार्रवाई पर फिलहाल न्यायपालिका से संसद की रार मची हुई है और इस प्रक्रिया में 'संसद की गरिमा' पूरी तरह विलुप्त हुई जा रही है।

सवाल देश की पूँजीवादी सरकारों, संसद या माननीय जनप्रतिनिधियों के चरित्र और आचरण भ्रष्टता का हो या पूँजीवादी जनतंत्र के असली चरित्र का—आम मेहनतकश जनता की नजर में ये पूरी तरह बेनकाब हो चुके हैं। देश के मज़दूर आन्दोलन की आज यह समस्या है ही नहीं कि आम मज़दूर या मेहनतकश इस व्यवस्था के चरित्र से परिचित नहीं हैं। इस व्यवस्था से उनका पूरी तरह मोहभंग हो चुका है। असल समस्या देशी-विदेशी पूँजी के एकजुट संगठित हमले के इस नये दौर में श्रम की शक्तियों की नये सिरे से लामबन्दी की नयी रणनीति विकसित करने की है।

ऐसा नहीं है कि भमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में देशी-विदेशी पूँजी के संगठित हमले को देश के मज़दूर वर्ग ने चुपचाप सहन किया है। जगह-जगह उसने मुठभेड़ें की हैं और जुझारू झड़पें हुई हैं। लेकिन यह एक दुर्भाग्यपूर्ण सच है कि कुछेक आंशिक जीतों के अलावा ज्यादातर ये लड़ाइयाँ हारी गयी हैं। उलटाव के इस दौर में पीछे हटने के बाद मज़दूर वर्ग ज्यादातर नौकरी बचाने की और कहीं-कहीं ट्रेड यूनियन अधिकारों की हिफाजत की जो लड़ाइयाँ लड़ रहा है, वे चाहे मरियल हों या जुझारू, ज्यादातर उनका नेतृत्व उन्हीं घुटे-घुटाये अर्थवादियों, ट्रेड यूनियन

(पेज 6 पर जारी)

नया वर्ष
नयी उम्मीदों
नयी तैयारियों
नयी शुरुआतों के नाम,
पराजय की घड़ी में भी
विजय के स्वप्नों के नाम,
लगातार लड़ते रहने की
की ज़िद के नाम
संकल्पों के नाम
जीवन, संघर्ष और सृजन के नाम,

नया वर्ष
युवा दिलों के नाम,
ज़िन्दा क़ौमों के नाम,
साहसिक यात्राओं के नाम,
सक्रिय ज्ञान के नाम,
न्याय-युद्ध में भागीदारी की
तत्परता के नाम,
सच्चे प्यार के नाम,
मानवता के भविष्य में
उत्कट आस्था के नाम!

आपस की बात

हर जगह मज़दूरों का हो रहा है शोषण

बिगुल के ताजा अंक में एक रिपोर्ट पढ़ी। 'राजस्थान और मध्यप्रदेश की भाजपा सरकारें प्रदेश को श्रमिकों के लिए यातना शिविर में बदल रही हैं।' लेकिन ठीक ऐसी ही हालत हमारे राज्य में भी है। हमारे उत्तरांचल की कांग्रेस सरकार भी इन भाजपा सरकारों से कम नहीं है, बल्कि आगे ही है।

यहाँ रूद्रपुर में सिडकुल के तहत सैकड़ों कारखाने लग रहे हैं। 75-80 कारखाने तो लग भी चुके हैं। ठेकेदारों की यहाँ चाँदी है। कारखानों में श्रम कानून तो कहीं लागू नहीं है। ज्यादातर जगह 12-12 घण्टे की ड्यूटी है। वह भी ठेकेदार की मनमर्जी पर। कोई छुट्टी नहीं। और दिहाड़ी 50 रुपये-60 रुपये। ऊपर से हाड़तोड़ मेहनत।

एक कारखाने का उदाहरण दें। नाम है हिमालया। जिंदल ग्रुप का कारखाना है। 1500 रुपया महीना पगार है। छह दिन 12 घण्टे की ड्यूटी और रविवार को 8 घण्टे की। यानी कोई छुट्टी नहीं। अगर काम ज्यादा रहा तो 36 घण्टे लगातार ड्यूटी। कैण्टीन भी नहीं और चाय की भी सुविधा नहीं। बाहर एक चाय की दुकान खुली भी तो उसे भी मैनेजरों ने बन्द करवा दिया।

प्रदेश के मुख्यमंत्री महोदय यहाँ आये दिन पहुँचे रहते हैं, कारखानों का शिलान्यास या उद्घाटन करने के लिए। अधिकारियों को डाँटते रहते हैं कि यहाँ अच्छी व्यवस्था क्यों नहीं है। लेकिन बेरोजगारों को नौकरी देने या मज़दूरों के लिए अच्छी व्यवस्था के लिए कुछ नहीं बोलते। उन्हें तो पूँजीपतियों की सेवा करनी है और वे यही कर रहे हैं।

किसी भी कारखाने में जाइये तो कह दिया जाता है जगह नहीं है और फिर ठेकेदार पैसे लेकर ड्यूटी दिलाता है। यहाँ भी मामला टेढ़ा है। न रखने के कई बहाने हैं। कोई स्थायी निवास प्रमाण पत्र मांगता है, तो कोई आई. टी.आई. ट्रेनिंग, तो कोई पढ़ाई का सर्टीफिकेट। यह सब होने पर टरकाने के कुछ और बहाने। मेरे एक परिचित के पास सब कुछ था और वो डाबर फैक्ट्री पहुँचे लेकिन उनकी गलती यह थी कि उन्होंने एम.ए. पास का सर्टीफिकेट लगा दिया। बस उन्हें कह दिया गया कि तुम ज्यादा पढ़े हो मज़दूरी लायक नहीं हो।

हालत यहाँ भी मध्यप्रदेश और राजस्थान जैसी ही है लेकिन हम बेबस और मजबूर हैं। गुस्सा तो लोगों में खूब है, लेकिन हम संगठित नहीं हैं, ऊपर से पहाड़-मैदान का झगड़ा। हमारे बँटे होने का फायदा पूँजीपति और सरकार तो उठायेगी ही।

इसलिए हमको एक होना पड़ेगा। जब हम एक होंगे तभी हम अपने ऊपर हो रहे जुल्म का जवाब दे पायेंगे।

नरेश कुमार
रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)

बिगुल के पाठक साथियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'बिगुल' के पिछले सात वर्षों का सफर तरह-तरह की कठिनाइयों-चुनौतियों से जूझते गुजरा है। इस दौरान अनेक नये हमसफ़र हमारी टीम से जुड़े हैं और पाठक-साथियों का दायरा भी काफी बढ़ा है। कहने की जरूरत नहीं कि अब तक का कठिन सफर हम अपने हमसफरों और शुभचिन्तकों के संग-साथ के दम पर ही पूरा कर सके हैं। हालात संकेत दे रहे हैं कि आगे का सफ़र और अधिक कठिन और चुनौती भरा ही नहीं बल्कि जोखिमभरा भी होगा। हमें विश्वास है कि हम अपने दृढ़संकल्प और हमसफ़र दोस्तों की एकजुटता के दम पर आगे ही बढ़ते रहेंगे।

'बिगुल' अपने पुरअसर तेवर और अपने विशिष्ट जुझारू अन्दाज़ के साथ आपके पास नियमित पहुँचता रहे, इसके लिए अख़बार के आर्थिक पहलू को और अधिक पुख़्ता बनाना जरूरी है। जाहिर है कि यह अपने संगी-साथियों और शुभचिन्तकों की मदद के बिना मुमकिन नहीं। हमारी आपसे पुरज़ोर अपील है कि :

- बिगुल के स्थायी कोष के लिए अधिकतम संभव आर्थिक सहयोग भेजें।
- जिन साथियों की सदस्यता समाप्त हो चुकी है वे यथाशीघ्र नवीनीकरण करा लें।
- बिगुल के नये सदस्य बनायें।
- बिगुल के वितरण को और व्यापक बनाने में सहयोग करें।
- कुछ वितरक साथियों के पास बिगुल के कई अंकों की राशि बकाया है। इसे यथाशीघ्र भेजकर बिगुल नियमित प्राप्त करना सुनिश्चित कर लें।

सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से सम्पादकीय कार्यालय के पते पर भेजें। बैंक ड्राफ्ट 'बिगुल' के नाम से भेजें।

—सम्पादक

लड़ना होगा

लड़ना होगा—लड़ना होगा
हर नया साल तुमसे ये हमेशा कहता होगा,
सभी दुखों से खुद ही, तुम्हें लड़ना होगा।
तूने सोकर गुजारे अब तक के सभी नये साल,
उठ जाग संकल्प ले, सबको तुझे जगाना होगा।
छोड़ भेद ऊँच-नीच, जाति-पाँति, धर्म और क्षेत्रवाद का,
बँध एक डोर से, एहसास गरीबी का तुम्हें करना होगा।
न रहे बेकारी-भुखमरी इसलिए तुझे सिर्फ लड़ना होगा
सभी दुखों से खुद ही तुम्हें लड़ना होगा
न देर कर, इस नववर्ष के सुअवसर पर ही तुझे
इंसान और हैवान का भेद समझना होगा।
सभी दुखों से खुद ही तुम्हें लड़ना होगा।
अपने हक अधिकार के लिए
अपनी आने वाली नस्ल के लिए
अपनी धरती और आकाश के लिए
अपनी बेहतर जिन्दगी के लिए
लड़ना होगा—लड़ना होगा—लड़ना होगा,
सभी दुखों से खुद...

नरेश कुमार
रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)

संसद और विधानसभाएं गुण्डों, डकैतों, वेश्यागामियों और तस्करों के अड्डे बन चुके हैं!

इनकी असलियत सामने आ गयी है! सांसद और विधायक पूंजीपतियों की सत्ता के चाकर हैं।

दोगले और पतित भारतीय पूंजीवाद के चरित्र के अनुरूप ही इनका भी चरित्र है।

भारतीय पूंजीवादी जनतंत्र पूंजीपतियों की तानाशाही है।

अरबों के खर्च से होने वाले चुनाव जनता के साथ धोखाधड़ी है!

इनके खिलाफ उठो! संगठित हो जाओ!

क्रान्ति की लम्बी और कठिन तैयारी में लग जाओ!!

हम तमाम इन्साफपसन्द, बहादुर और विवेकशील नागरिकों का आह्वान करते हैं!

हम तमाम मेहनतकश लोगों का आह्वान करते हैं!

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी- अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

शहीद भगतसिंह की चार ज़रूरी पुस्तिकाएँ
हर नौजवान हर मज़दूर के लिए ज़रूरी
• क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा
• मैं नास्तिक क्यों हूँ और ड्रीमलैण्ड की भूमिका
• बम का दर्शन और अदालत में बयान • जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो • भगतसिंह ने कहा...
जनचेतना के सभी केन्द्रों से प्राप्त करें

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क : 29, यू.एन.आई. अपार्टमेण्ट, जीएच-2, सेक्टर-11, वसुंधरा-गाजियाबाद-201010
ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्यः एक प्रति—रु. 3/- वार्षिक—रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :
1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. जनचेतना सचल स्टाल (डेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ ज़रूरी पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा —लेनिन 5/-
मकड़ा और मक्खी —विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके —सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
अनश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
समाजवाद की समस्याएं, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
क्यों माओवाद? 10/-
बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 5/-
मई दिवस का इतिहास 5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17 रु. रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें: जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ।

भ्रष्टाचारियों-लुटेरों के एक और गिरोह का खुलासा

सोचो! देश और हमारी नियति किनके हवाले

सम्पादकीय डेस्क से

इराक से तेल के बदले अनाज घोटाले पर वोल्कर समिति रिपोर्ट का मुद्दा अभी तक शान्त भी नहीं होने पाया था कि देश की पूँजीवादी संसदीय राजनीति का एक और विद्रूप चेहरा खुलकर सामने आ गया। चूंकि इस बार ज्यादातर पार्टियों का भाण्डा एक साथ फूटा है लिहाजा 'मैं नहीं तू नँगा' का खेल खेलने का मौका ही नहीं मिला। नँगों के इस मेले में पूँजीवादी पार्टियों को ढँकने के लिए चिथड़े भी नहीं मिल रहे हैं।

नंगों के खुले प्रदर्शन के इस ताजा एपिसोड की शुरुआत उस वक्त हुई जब विभिन्न टीवी चैनलों ने एक के बाद एक जनप्रतिनिधियों (सांसदों) के रिश्वतखोरी-भ्रष्टाचार की पोलपट्टी खोल दी। टी.आर.पी रेटिंग बढ़ाने के लिए मसालेदार खबरों से ज्यादा से ज्यादा दर्शक बटोरने और विज्ञापन की दर बढ़ाने की होड़ में लगे टीवी चैनलों से लेकर अखबार तक चटपटे मसालेदार खबरों से एक बार फिर भर गये हैं। अब सर से पाँव तक भ्रष्टाचार में डूबे शासक गिरोह संसदीय "गरिमा" को बचाने के लिए आनन-फानन में कार्रवाई में लग गये। इस "पवित्रता" के प्रयास में संसदीय वामपंथी सबसे आगे हैं।

12 दिसम्बर को एक निजी न्यूज चैनल द्वारा 'ऑपरेशन दुर्योधन' के तहत 11 सांसदों को संसद में सवाल पूछने के एवज में रिश्वत लेते दिखाया गया इसमें भाजपा के छह, बसपा के तीन और कांग्रेस व राजद के एक एक सांसद लिप्त थे। फिर क्या था, संसदीय सुअरबाड़े की लाज बचाने की शुरुआत हुई। आनन-फानन में जाँच कमेटी बनी और सभी 11 सांसद बलि का बकरा बन गये, उनकी सदस्यता खत्म हो गयी।

लेकिन अभी यह कवायद चल ही रही थी कि टी.आर.पी. रेटिंग में पिछड़ रहे एक दूसरे निजी चैनल ने ऑपरेशन चक्रव्यूह में सात और सांसदों को सांसद विकास निधि में कमीशनखोरी में लिप्त दिखा दिया। इस बार भाजपा के दो तथा कांग्रेस, सपा, बसपा और राष्ट्रीय क्रान्ति पार्टी के एक-एक सांसद शामिल पाये गये। ये मामला भी जाँच कमेटियों के सुपुर्द हो गया और फिर इज्जत ढाँपने की कवायद होने लगी, सांसद निधि के औचित्य पर ही बहस शुरू हो गयी। यादव, या फिर हवाला में फँस चुके विपक्षी नेता लालकृष्ण आडवाणी, अथवा ताज कारीडोर अभियुक्त मायावती या फिर इस जमात का कोई और! कानून बन भी जाये तो लागू कौन करेगा जबकि नौकरशाही-अफसरशाही से लेकर न्यायपालिका तक सब जगह भ्रष्टाचार का ही बोलबाला है। आज के दौर में भ्रष्टाचार जायज-नाजायज सभी प्रकार के कृत्यों में लिप्त हैं।

यही नहीं एक के बाद एक घोटालों के उजागर होने का परिणाम यह निकला है कि अब लोगों ने इन पर चौंकना बन्द कर दिया है। भ्रष्टाचार सर्वस्वीकृत बात बन गयी है और आम जनता उसकी आदी बनती जा रही है। अपने को नंगा करके भी पूँजीवादी अलमबरदार आपसी नोच-खसोट में खुद ही उन्हें तार-तार करके फेंक दे रहे हैं।

आज पूँजीवादी राजनीति की पतनशीलता सम्पूर्ण पूँजीवादी तंत्र की पतनशीलता का आईना है। सभी चुनावी राजनीतिक दल, समूची अफसरशाही- नौकरशाही, संसद-विधानसभाएँ, न्यायपालिकाएँ 'हम किसी से कम नहीं' के अन्दाज में पतनशीलता के उस मुकाम पर पहुँच गये हैं जहाँ सारे मुहावरे और अलंकार भी शरमा जाए। लेकिन सबसे चिन्तनीय यह बात है कि धीरे-धीरे लोग घपलों-घोटालों- भ्रष्टाचार ही नहीं तमाम पूँजीवादी कानूनी-गैरकानूनी अपराधों के भी आदी होते जा रहे हैं। शायद यह लोगों की विवशता ही है कि वे इसे अपनी नियति मान चुके हैं।

विकल्पहीनता के इस दौर में आम जनता की यही विवशता पूँजीवादी लूटतंत्र की ताकत बनी हुई है। निश्चित रूप से देश की मेहनतकश जनता को निराशा के अंधकूप से बाहर निकलना होगा, अपनी बेबसी से मुक्त होना होगा। अगर तरह-तरह के घपलों-घोटालों-अपराधों को मिटाना है तो समूची पूँजीवादी सभ्यता को ही निशाने पर रखना होगा क्योंकि यह अपराध की कोख से ही पैदा हुई है। एक सच्चे समतामूलक समाज यानी श्रमतांत्रिक जनतंत्र की स्थापना के लिए धनतांत्रिक जनतंत्र का जड़मूल से नाश करना होगा। इस कठिन मार्ग पर चलने के लिए हमें पहल लेनी ही होगी।

हम पर शासन करने वाले भ्रष्टाचारियों-लुटेरों की मुख्य शक्ति राज्यसत्ता है। पर जनता की संगठित शक्ति के सामने वह रेत की ढेरी है। शासकों की असली शक्ति हमारी निराशा और किंकर्त्तव्यविमूढ़ता है। इसे तोड़ना ही होगा।

जिस व्यवस्था में हर वर्ष सैकड़ों खरब की कानूनी लूट होती है, उसी की कोख से पैदा होती है गैरकानूनी लूट • खुली बाज़ार अर्थव्यवस्था में जारी है भ्रष्टाचार का खुला खेल फर्रुखाबादी • भ्रष्टाचार का गन्दा खून इस लुटेरे तंत्र के किसी एक अंग में नहीं बल्कि पूरे शरीर में बह रहा है • पूँजीवाद से सदाचार की उम्मीद मत करो! इसे तबाह करने की तैयारी करो!!

इसी बीच निजी चैनलों की होड़ ने एक और खुलासा कर दिया और बसपा के दो सांसद फर्जी पासपोर्ट और वीजा काण्ड में फँस गये।

भ्रष्टाचार के इन नये खुलासों के बाद संसद के गलियारों से लेकर टीवी चैनलों और राष्ट्रीय कहे जाने वाले अखबारों तक के पन्नों पर समाज और सार्वजनिक जीवन में नैतिकता के पतन पर आँसू बहाये जा रहे हैं और सदाचार की बातें एक बार फिर जोर-शोर से उठने लगी हैं। संसदीय वामपंथी तो पूँजीवादी राक्षसी चेहरे पर नये नकाब डालने को आतुर हैं ही, तमाम भले और भोले कलमनवीस भी बेहद फिक्रमंद हैं। सांसदों के लिए आचार संहिता बनाने से लेकर सांसद निधि खत्म करने तक के तरह-तरह के नित नये सुझाव पेश हो रहे हैं।

लेकिन सवाल यह है कि क्या भेड़ियों से देश की रखवाली संभव है? कौन रोकेगा भ्रष्टाचार को? वित्त मंत्री पी चिदम्बरम, जो कि 12 वर्ष पहले वाणिज्य मंत्री रहते हुए शेयर घोटाले में फँसकर एक बार मंत्री पद गँवा चुका है, या भ्रष्टाचार के अनगिनत मामलों में चार्जशीट पाये रेल मंत्री लालू प्रसाद की संस्कृति तो मान्यता प्राप्त हो चुकी है। आलम यह है कि अकेले काले धन की समान्तर अर्थव्यवस्था सफेद धन की अर्थव्यवस्था से बड़ी हो चुकी है। रिश्वतखोरों-कालाबाजारियों-सटोरियों-दलालों का ही जोर है।

मान लीजिए यह भ्रष्टाचार अथवा यह गैर कानूनी लूट खत्म हो जाये, जैसा कि संसदीय वामपंथियों की चाहत है, तो उस कानूनी लूट यानी मुनाफाखोरी का क्या होगा जो खेतों-खलिहानों-खदानों-कारखानों में खटने वाले मज़दूरों के खून-पसीने को निचोड़कर लूटा जाता है? क्या इस पूँजीवादी व्यवस्था का मौजूद होना ही अपने आप में सबसे बड़ा अपराध नहीं है जिसका वजूद ही मेहनतकश जनता की बेलगाम लूट पर टिका है। नाजायज लूट तो इसी जायज लूट की जारज सन्तान है।

और फिर क्या भ्रष्टाचार का खुलासा करके जनता की वाहवाही लूटने वाले टीवी चैनलों की नीयत भ्रष्टाचार मिटाने के प्रति पाक-साफ है? ये चैनल भी टी.आर.पी. रेटिंग में अपने को ऊपर पहुँचाकर अपने मुनाफे को और बढ़ाने के लिए हुकूमत अपना एक हित साधे ले रही है। अपनी ही परेशानियों को बढ़ाने वाले और अपनी ही लूट की कमाई पर ऐश करने वाले बदमाशों और चोट्टों के कारनामों को बस दिलचस्पी ले-लेकर पढ़ना-देखना हमारे-आपके लिए क्या एक निराश-कुत्सित मानसिकता का परिचायक नहीं है?

लेकिन नहीं। यह कतई नहीं माना जा सकता है कि दिन पर दिन बढ़ती मंहगाई, बेरोजगारी और अभाव की मार झेलते मेहनतकश, छात्र-युवा और आम मध्यम तबके के लोग बिना किसी नफरत के बस भ्रष्टाचार के नित नये रहस्य उद्घाटनों के मजे ले रहे हैं। ऊपर से दिखने वाली ठण्डी तटस्थता के पीछे एक गहरी नफरत और गुस्से की आग सुलग रही है। इस लुटेरी व्यवस्था के पैरोकार-सिद्धान्तकार अच्छी तरह से इस आग की आंच महसूस कर रहे हैं और चिन्तित हैं। इसलिए वे पूँजीवादी जनतंत्र की कुरूप नग्नता को ढँकने की तरह-तरह की कवायदें कर रहे हैं। यह अलग बात है कि वे विकल्पों और हवाई उम्मीदों के जितने भी लत्ते ओर चिथड़े बटोर कर ला रहे हैं उसे इस संसदीय जनतंत्र के

जनता नहीं पूँजीपतियों के सेवक मुख्यमंत्री

(बिगुल संवाददाता)

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। उत्तरांचल सरकार ने इस बार राज्य की शिक्षा का पैटर्न बदलकर एन.सी.ई.आर.टी. के आधार पर कर दिया। अचानक इस तुगलकी परिवर्तन से कई दिक्कतें सामने आ रही हैं। इनमें से एक है अचानक व्यावसायिक शिक्षा की समाप्ति। विद्यार्थियों को महज तीन-चार माह में नये विषय की तैयारी में दिक्कतें आना स्वाभाविक है। सो एक विद्यालय की छात्राओं ने मुख्यमंत्री से फरियाद करनी चाही।

हुआ यूँ कि मुख्यमंत्री एन.डी. तिवारी के एक कार्यक्रम में स्थानीय सनातन धर्म कन्या इण्टर कॉलेज की छात्राएँ भी गयीं। कार्यक्रम के बाद छात्राओं ने मुख्यमंत्री के आगे अपनी परेशानी रखते हुए कहा कि महज तीन माह में नये विषय की तैयारी कैसे करें? बस तिवारी जी की त्योरियाँ चढ़ गयीं। बोले मैं क्या करूँ यह केन्द्र का मामला है। और फिर आगे बढ़ गये और विद्यालय की अध्यापिकाओं को डाँट पिलायी कि वे छात्राओं को लेकर क्यों आयीं? बाद में जब कुछ पत्रकारों ने इस मुद्दे पर उनसे सवाल पूछा तो वे हजारों छात्रों के भविष्य के साथ खिलवाड़ के इस मुद्दे से कन्नी काट गये।

वैसे भी मुख्यमंत्री का पूरा ध्यान राज्य में देशी और बहुराष्ट्रीय पूँजीपतियों की सेवा-टहल में ही लगा रहता है। उत्तरांचल एक पर्वतीय राज्य है। लेकिन मुख्यमंत्री के केवल तीन ठिकाने हैं—सिडकुल के तहत लगने वाले सैकड़ों उद्योगों वाले जिले ऊधमसिंह नगर, हरिद्वार और राजधानी देहरादून। इनमें से उनका काफी वक्त ऊधमसिंह नगर के रुद्रपुर-पन्तनगर के सिडकुल क्षेत्र में व्यतीत होता है—नये कारखानों के शिलान्यास में। अब मुख्यमंत्री के पास फुरसत कहाँ है कि वे छात्रों-नौजवानों या आम जनता की बात भी सुन सकें। यह है विकास-पुरुष मुख्यमंत्री की दास्तान।

पूँजीवादी तंत्र की संवेदनहीनता –राहत की जगह मौत

(कार्यालय संवाददाता)

यह है पूँजीवादी लुटेरी अमानवीय समाज की त्रासदी। प्राकृतिक तबाही-बर्बादी भरे मंजर के बाद व्यवस्था के क्रूर हमले से असमय काल के गाल में समा जाना। दर्दनाक मौत का शिकार होना। ऐसी मौतों की अनवरत शृंखला है। भीषण गर्मी हो तो मौतें, बारिस की त्रासदी हो तो मौतें, ठण्ड और शीतलहर हो तो मौतें और राहत की नौटंकी हो तो मौतें। कौन मरता है इसमें? जाहिरा तौर पर अभाव में जीने वाली गरीब मेहनतकश अवाम।

तमिलनाडु की राजधानी चेन्नई में बाढ़ में अपना सब कुछ गवाँ चुके हजारों लोग जब एक राहत शिविर में कुछ पाने की उम्मीद में पहुँचे तो सैकड़ों की भगदड़ में कुचल कर मौत हो गयी। और उसके बाद वोट के संवेदनहीन सौदागरों के बीच लाश पर वोट का व्यापार शुरू हो गया।

चेन्नई के एम.जी.आर. नगर इलाकों में सरकार द्वारा घोषित राहत सामग्री कूपन पाने के लिए विगत 19 दिसम्बर को करीब साढ़े चार हजार लोग अर्धरात्रि में 3 बजे से ही एकत्रित हो गये। यहाँ प्रशासन का कोई पुख्ता सुरक्षा इंतजाम भी नहीं था। इसी बीच बारिश से वहाँ भगदड़ मच गयी और लोग एक दूसरे को रौंदते-कुचलते भागने लगे। एक सूत्र के अनुसार भगदड़ को नियत्रित करने की जगह पुलिस द्वारा लाठीचार्ज की भी घटना हुई। इस प्रकार राहत का ऐसा सबब मिला गरीबों को।

इस घटना में यूँ तो सैकड़ों मौतें हुई हैं और सैकड़ों घायल हुए। लेकिन जैसा कि हमेशा होता आया है, सरकारी आँकड़ों के अनुसार 23 महिलाओं समेत 42 लोगों की मौत हुई और 50 घायल हुए। उल्लेखनीय है कि लगभग एक माह पूर्व व्यासारपाड़ी के राहत शिविर में भी ऐसी ही बदइंतजामी से हुई भगदड़ में 6 लोगों की मौत हो चुकी थी।

बहरहाल, सत्तापक्ष और विपक्ष के बीच कुत्ताघसीटी का एक और मुद्दा मिल गया है और अपने गम में डूबी बदहाल जनता के पास अपनी बेबसी के आँसू बहाने के सिवाय कुछ नहीं है।

दौड़ रहा है उदारीकरण का बेलगाम घोड़ा

खाली पदों की समाप्ति, बीमा में विदेशी भागीदारी बढ़ाने, सरकारी छुट्टियाँ घटाने की की तैयारी

दिल्ली। उदारीकरण का बेलगाम घोड़ा अब सरपट दौड़ने लगा है। मक्कारी भरे अन्दाज में प्रधानमंत्री कहते हैं कि श्रम कानूनों को "लचीला" बनाया जाये ताकि रोजगार के अवसर बढ़ें। उधर उनका मंत्रिमण्डल खाली नौकरी के पदों को खत्म करने का प्रस्ताव देता है। वे विकास की राह को आसान बनाने की बात करते हैं और मज़दूरों-कर्मचारियों ने लम्बे संघर्षों से जो अधिकार पाये हैं उसे छीनने की कवायद चलती है। कर्मचारियों की छुट्टियां घटाने की बात होने लगती है, बैंकों में कार्य अवधि बढ़ाने की बात होती है तो बीमा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश बढ़ाने की बात चल पड़ती है। ऐसे ही कुछ ताजातरीन कवायदों की बानगी प्रस्तुत है :-

कांग्रेस नेतृत्व वाली संप्रग सरकार के वित्त मंत्रालय ने, पूर्ववर्ती भाजपा नेतृत्व वाली राजग सरकार द्वारा 2001 में जारी एक आदेश को, 23 नवम्बर 2005 को पुनः जारी कर दिया। इस आदेश में मंत्रालय ने विभिन्न विभागों को उन पदों की सूची तैयार करने को कहा है जो छह महीने से खाली हैं। खाली पदों की सूचना 31 मार्च 2006 तक विभाग मंत्रालय तक भेजेंगे। इसके तहत पदों में दस फीसदी की कटौती और एक वर्ष से खाली पदों को समाप्त करने तथा बहाली (या नयी भर्ती) पर स्थायी रोक का प्रस्ताव है।

यह ठीक वैसा ही कदम है जैसा भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार उठा चुकी है। उस वक्त एक झटके में केन्द्रीय कर्मचारियों के साढ़े तीन लाख पद समाप्त कर दिये गये थे। इसी राह पर चलते हुए कई राज्य सरकारों ने भी सरकारी पद खत्म कर दिये थे। यह भी ध्यान देने की बात है कि देश में पिछले डेढ़ दशक से कर्मचारियों के बड़ी संख्या में अवकाश प्राप्त करने (रिटायर्मेण्ट) के बावजूद नयी भर्तियाँ लगभग बन्द हैं। बैंकों आदि में जहाँ स्वैच्छिक (यानी जबरिया) अवकाश के तहत लोगों की नौकरियों से छुट्टी कर दी गयी वे सारे पद मृत घोषित किये जा चुके हैं।

यह है उदारीकरण के दौर की एक सच्चाई।

●

पिछली राजग सरकार ने निजीकरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाते हुए बीमा क्षेत्र को निजी क्षेत्र में ढकेलते हुए 26 फीसदी तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए दरवाजा खोल दिया था। इसी के साथ भारतीय बीमा नियामक व विकास प्राधिकरण (आई.आर.डी.ए.) का गठन हुआ था। तबसे बीमा क्षेत्र में आई.सी.आई.सी.आई., प्रूडेंशियल लाइफ मेकस न्यूयार्क लाइफ, अबीवा, आई.एन.जी. वैश्य जैसी दर्जनों देशी-विदेशी कम्पनियाँ बीमा क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी हैं। इन कम्पनियों के विदेशी आकाओं की यह मांग रही है कि बीमा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.) की सीमा बढ़ायी जाये। सरकार भी इसके पक्ष में रही है।

अब आई.आर.डी.ए. के अध्यक्ष सी.एस. राव ने पिछले दिनों एक संगोष्ठी में बीमा क्षेत्र में एफ.डी.आई. सीमा 26 फीसदी से 49 फीसदी करने की अपनी मंशा प्रकट कर दी। उन्होंने कहा कि बीमा क्षेत्र के निरन्तर विकास के लिए और धन की जरूरत को देखते हुए आई.आर.डी.ए. इसके लिए एफ.डी.आई. सीमा बढ़ाने का समर्थन कर रहा है ताकि विदेशी निवेशक और पैसा लगा सकें।

जाहिरा तौर पर अथाह पूँजी के इतने बड़े भण्डार, देश के बीमा क्षेत्र पर बहुराष्ट्रीय लुटेरों की गिद्ध दृष्टि लगी हुई है और वे इसे पूरा हजम करने की योजना पर काम कर रहे हैं। सरकार भी बड़ी समझदारी से, टुकड़ों में, बीमा क्षेत्र के निजीकरण की दिशा में कदम बढ़ा रही है। सी.एस. राव का बयान इसी दिशा में आगे बढ़ा हुआ एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

●

केन्द्र सरकार एक और कर्मचारी विरोधी फैसला लेने की तैयारी में है। वह सरकारी कर्मचारियों की छुट्टियों में कटौती करने का फरमान जारी करने वाली है। इसके लिए सरकार काफी तामझाम भी खड़ा कर रही है।

केन्द्र सरकार के कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग ने सरकारी छुट्टियों में कटौती के सन्दर्भ में केन्द्र के सभी मंत्रालयों और राज्य सरकारों के पास प्रस्ताव भेजा और उनकी प्रतिक्रिया माँगी है। उसने आम प्रतिक्रिया के लिए वेबसाइट पर एक प्रश्नावली भी जारी की है। उल्लेखनीय है कि देश में फिलहाल 17 राजपत्रित और दो निर्वर्जित (ऐच्छिक) छुट्टियाँ स्वीकृत हैं, जो लम्बे संघर्षों के बाद कर्मचारियों ने प्राप्त की हैं।

यही नहीं सरकार की निगाह में केन्द्रीय कर्मचारियों को मिलने वाले दो साप्ताहिक अवकाश भी खटक रहे हैं। गौरतलब है कि दो दशक पूर्व राजीव गांधी सरकार ने दैनिक काम के घण्टे बढ़ाकर एक की जगह दो साप्ताहिक अवकाश घोषित किये थे। इस दौरान लगभग सभी विभागों में लगातार कर्मचारियों की संख्या कम होती गयी है और काम का बोझ बढ़ता गया। अब सरकार काम के घण्टे बगैर घटाये इस छुट्टी को भी समाप्त करना चाहती है।

तर्क यह दिया जा रहा है कि दुनिया के अन्य देशों के मुकाबले भारत के कर्मचारियों को ज्यादा छुट्टियां दी जाती हैं। निजी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की कार्यशैली के साथ-साथ एक बार फिर प्रतिस्पर्धा के दौर की दुहाई दी जा रही है।

दरअसल सरकार का यह कदम काम के घण्टे बढ़ाने और छुट्टियाँ घटाने की मज़दूर विरोधी नीति का ही हिस्सा है। यह उदारीकरण के दौर में देशी व विदेशी पूँजीवादी मुनाफाखोरों के दिशानिर्देश का ही एक हिस्सा है जिसे सरकार अमली जामा पहनाने जा रही है।

भूमण्डलीकरण से घटती नौकरियाँ, बढ़ती गरीबी

1. केन्द्रीय राज्य मंत्री आस्कर फर्नांडीज ने लोकसभा में बताया कि वर्ष 2004-05 के दौरान राष्ट्रीय आय 13,54,499 करोड़ रुपये और देश में प्रति व्यक्ति आय 12,416 रुपये है। इसमें ऊपर की इस बीस फीसदी लोगों की आय, जो कुल आय के आधे से ज्यादा राशि पर कब्जा जमाते हैं और नीचे की बीस फीसदी वह आबादी भी शामिल है जिसके हिस्से कुल आय का दसवां हिस्सा भी नहीं आता। देश की एक बड़ी आबादी अनुसार मौजूदा समय में दुनिया के आधे से अधिक कामगारों के परिवार रोजाना महज दो डालर (लगभग 95 रुपये) में गुजर बसर करते हैं। यह संख्या 1.38 अरब के आस पास है। रिपोर्ट के अनुसार विश्व भर में 1990 से 2000 के बीच ऊंची नौकरियों में वेतन में भारी वृद्धि हुई है जबकि छोटी नौकरियों में कोई वेतन वृद्धि नहीं हुई है। यानी अफसरों-मैनेजरों की तो चाँदी रही है जबकि मज़दूरों की बदहाली।

बोलते आंकड़े... चीखती सच्चाइयां...

गरीबी रेखा के नीचे रहती है। सरकार गरीबी रेखा से नीचे उसे मानती है जिसकी शहर में प्रतिदिन 14 रुपये और गांव में प्रतिदिन आय 11 रुपये से कम हो।

2. संयुक्त राष्ट्र के एक अध्ययन के मुताबिक दुनिया में काम के दौरान दुर्घटनाओं और बीमारियों से हर साल लगभग 22 लाख मज़दूर मारे जाते हैं। इनमें से लगभग 40 हजार मौतें अकेले भारत में ही होती हैं।

3. संयुक्त राष्ट्र की श्रम एजेंसी के अनुसार वैश्विक अर्थव्यवस्था के विकास से नौकरी के अवसर नहीं बढ़ेंगे बल्कि इससे निर्धनता बढ़ेगी। 'की इंडीकेटर्स ऑफ दी लेबर मार्केट' में छपी रिपोर्ट के

4. रिपोर्ट के अनुसार महिलाएँ पुरुषों के मुकाबले कम वेतन वाली, कम उत्पादन वाली और अल्प अवधि वाली नौकरियों में लगी हैं। इसी रिपोर्ट के अनुसार युवाओं में बेरोजगारी की दर अधेड़ व्यक्तियों की तुलना में बहुत अधिक है।

5. अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार विकसित अर्थव्यवस्था और यूरोपीय संघ के देशों में क्षमता से कम उपयोग किये जाने वाले कामगारों की संख्या बढ़ रही है। यानी पार्ट टाइमर बढ़ रहे हैं। 1994 में फ्रांस में ऐसे कामगारों की संख्या 17 फीसदी और इटली में 12 फीसदी थी, जो अब बढ़कर 21 फीसदी तक पहुँच चुकी है।

संसदीय वामपंथियों के नये मसीहा वी.पी. सिंह

"जो तब न कर सके अब करेंगे"

लगभग दो दशक पूर्व बोफोर्स काण्ड के बाद भ्रष्टाचार विरोध के रूप में उभरकर प्रधानमंत्री बन चुके वी. पी. सिंह एक बार फिर अभियान पर निकल पड़े हैं। इस बार किसान समस्या को उन्होंने आधार बनाया है। इस बार भाकपा और भाकपा (माले) जैसे चुनावी रंगे सियार उनकी दुम पकड़ कर लटक गये हैं और इस पूँजीवादी बहुरूपिए की तारीफ के कसीदे पढ़ रहे हैं।

वी.पी. सिंह की किसान रैली के हमराही भाकपा (माले) के अखिलेन्द्र प्रताप सिंह, वी.पी. सिंह को वाम जनवादी लोकतांत्रिक विकल्प खड़ा करने की धुरी बताते हुए बड़ी ही निर्लज्जता से कहते हैं कि 'वी.पी. सिंह बीस साल पहले जो नहीं कर सके वो अब कर रहे हैं'। जबकि भाकपा नेता अशोक मिश्र उन्हे कद्दावर नेता मानते हैं कि 'जो व्यक्ति डायलिसिस कराकर गाँव-गाँव में अलख जगाता घूम रहा है, उसके प्रति लोगों में सम्मान बढ़ना स्वाभाविक है।'

18 साल पूर्व वी.पी. सिंह ने भ्रष्टाचार को मुद्दा बनाया था और उस समय गठित राष्ट्रीय मोर्चे के 71 सूत्रीय कार्यक्रम में उन्होंने देश को तत्कालीन राजनैतिक और आर्थिक अव्यवस्था से मुक्त कराने और लोगों को एक ईमानदार, नैतिक और सामाजिक न्याय वाली सरकार देने का वचन दिया था और भ्रम की एक आँधी बहाकर प्रधानमंत्री की कुर्सी हासिल कर ली जो कुर्सी की खींच-तान में अपना आधा कार्यकाल भी पूरा नही कर सकी। उनका मण्डल का हथियार मुलायम सिंह, लालू प्रसाद यादव जैसों के हाथ में चला गया और भ्रष्टाचार का कोढ़ और भयानक रूप में फूट पड़ा। अब वी.पी. सिंह के तरकश से भ्रष्टाचार का तीर ही तिरोहित हो चुका है।

दरअसल वी.पी. सिंह के पास भ्रष्टाचार के कारणों का न तो कोई विश्लेषण था, न ही इसे खत्म करने का कोई कारगर उपाय और सबसे बड़ी बात कि उनकी ऐसी नीयत भी नही थी। शीर्ष के भ्रष्टाचार का मुद्दा उनके लिए सिर्फ गाय की पूँछ के समान था जिसे पकड़कर वे चुनावी वैतरणी पार करना चाहते थे। इसके बावजूद उस वक्त लोगों ने वी.पी. सिंह के मुद्दे का समर्थन किया और उस समय सड़क पर उतरे तो इसका कारण यह था कि बोफोर्स घोटाला पूँजीवादी राजनीति की पतनशीलता के नये दौर का पहला आंख खोलने वाला उदाहरण था।

वी.पी. सिंह ने राजनीति में फिर से घुसपैठ करने के लिए झुग्गी-झोपड़ियों से लेकर कई तरह की उछल-कूद मचाने के बाद अब नया शिगूफा छोड़ते हुए किसान हित के पैरोकार बन बैठे हैं और फिर एक नयी मुहिम शुरू कर दी है।

किसी विद्वान ने लिखा है कि 'पहली बार त्रासदी दूसरी बार प्रहसन' तो वी.पी. सिंह का प्रहसन चल रहा है और चुनावी वामपंथी कामरेड अपनी चुनावी वैतरणी पार करने के लिए उनके पीछे लग गये हैं। विचारधारा को पहले ही तिलांजलि दे चुके भाकपा से लेकर भाकपा (माले) जैसे चुनावी मदारी सर्वहारा वर्ग को छोड़कर धनी किसानों के हिमायती बन बैठे हैं और अपना वोट बढ़ाने में जुट गये हैं।

तभी तो अखिलेन्द्र प्रताप जैसे लोग जब यह कहते हैं कि 'वी.पी. सिंह जो तब न कर सके अब करेंगे।' तो यह भुलाने की ही कोशिश करते हैं कि तब उनका एजेण्डा भ्रष्टाचार था (जो दूर होने की जगह बढ़ता ही गया) और अब धनी किसानों की हित रक्षा। उन्हें तो वाम जनवादी लोकतांत्रिक विकल्प खड़ा होते दीख रहा है—एक ऐसा मोर्चा जिसकी धुरी वी.पी. सिंह होंगे और बिहार चुनावों में इनके धुर विरोधी 'राष्ट्रीय जनता दल से लेकर लोक जनशक्ति पार्टी तक' सभी मध्यमार्गी पार्टियाँ होंगी। मुलायम सिंह सरकार के सहयोगी अजित सिंह तो इस मुहिम में साथ हैं ही।

बिहार में मुलायम से हाथ मिलाओ तो उत्तर प्रदेश में लालू व राम विलास से। माले जैसे वामपंथी चुनावी मदारियों की यही त्रासदी है।

आकाश दीप

जब तक मानव-मानव का सुखभाग नहीं सम होगा
शमित न होगा कोलाहल संघर्ष नहीं कम होगा!

— दिनकर

सदाचार और नैतिकता की बात किससे?

(कार्यालय संवाददाता)

उदारीकरण और भूमण्डलीकरण का दौर खुली बाजार अर्थव्यवस्था यानी खुली पूँजीवादी लूट का दौर है। पूँजीवाद के सभी आदर्शों के आवरण उतर चुके हैं। राजनीतिक भ्रष्टाचार का घटाटोप इसी की एक तार्किक परिणति है।

भ्रष्टाचार हमारे देश में कोई नई चीज नहीं है। 1951 में नेहरू सरकार का एक मंत्री एच.जी. मुद्गल संसद में पैसा लेकर सवाल पूछने के मामले में फँस चुका है। लेकिन अब पूँजीवादी राजनीति का यह कोढ़ भयानक रूप धारण कर चुका है। पिछले 58 सालों के दौरान जैसे-जैसे स्वाधीनता आन्दोलन से जन्मे आदर्श सामाजिक-राजनीतिक जीवन में समाप्त होते गये हैं, जैसे-जैसे पूँजीवादी लूट बढ़ती गयी है और व्यवस्था का संकट गहराता गया है, वैसे-वैसे सामाजिक राजनीतिक जीवन की सड़ांध भी बढ़ती गयी है। लगभग दो दशक पूर्व दलाली के नायक राजीव गांधी ने स्वीकार किया था कि विकास के लिए दिये जाने वाले एक रुपये से गाँव तक महज पन्द्रह पैसा पहुँचता है।

लेकिन पिछले डेढ़ दशक के दौरान राजनीतिक भ्रष्टाचार की घटनाओं में अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई है। शेयर घोटाला, हवाला काण्ड, सांसद रिश्वत काण्ड, अलकतरा, चीनी, यूरिया, चारा, वर्दी, तहलका, ताबूत, स्टाम्प घोटाला, संचार, यू.टी.आई., ताज गलियारा, जूदेव, जोगी काण्ड से लेकर वर्तमान में सांसदों के भ्रष्टाचार तक की लम्बी फेहरिश्त बन चुकी है; जिसे याद रखना भी कठिन है। एक घोटाला अभी दृश्य पटल से ओझल भी नहीं होता कि एक नया बिद्रूप दृश्य सामने आ जाता है।

सामान्य सी बात है–पूँजीपतियों के लूटतंत्र के राजनीतिक मुलाजिम भला सदाचारी और नैतिक कैसे हो सकते हैं? और क्यों हों? भ्रष्टाचार पर शोर मचने पर लगभग आधी शताब्दी पूर्व ही भ्रष्टाचार की अम्मा इन्दिरा गांधी ने कह दिया था कि भ्रष्टाचार केवल भारत में ही नहीं है, यह एक विश्वव्यापी परिघटना है।

कानूनी लूट के गर्भ से पैदा होती है गैरकानूनी लूट

भ्रष्टाचार के नये खुलासों से पूँजीवादी पार्टियों से लेकर विचारकों तक में पण्डिताऊ चर्चाएँ व निठल्ली बौद्धिक कवायदें एक बार फिर तेज हो गयी हैं। लेकिन क्या यह संभव है? क्योंकि इन घपलों-घूसखोरियों के जरिये होने वाली एक गैरकानूनी लूट (जिसे देश का कानून लूट मानता है) तो उस कानूनी लूट के गर्भ से पैदा होती है, जिसकी बुनियाद पर देश का वर्तमान ढांचा खड़ा है।

यह कानूनी लूट क्या है? यह लूट है पैदावार के साधनों पर निजी मिल्कियत के कानूनी हक की बुनियाद पर मुट्ठी भर देशी-विदेशी मुनाफाखोरों द्वारा कारखानों, खदानों, खेत-खलिहानों से लेकर सेवा क्षेत्र तक में करोड़ों-करोड़ मेहनतकशों की मेहनत की लूट। हमारा संविधान-कानून इस लूट को न केवल मान्यता देता है, बल्कि इस लूट की मशीनरी की हिफाजत में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका (यानी पुलिस-फौज-प्रशासन से लेकर कोर्ट कचहरी तक) का ढाँचा भी खड़ा है जिसे जनतंत्र के नाम पर हमारे ऊपर थोप दिया गया है।

यह कानूनी लूट कैसे चलती है, इसे मोटे तौर पर समझने की कोशिश करते हैं।

इस पूँजीवादी व्यवस्था की जड़ में है मुनाफा। हमारी मेहनत से जो अतिरिक्त मूल्य पैदा होता है वह मुनाफे के रूप में पूँजीपति की जेब में चला जाता है। यदि हम किसी कारखाने में आठ घण्टे खटते हैं तो मालिक हमें दो, तीन या चार घण्टे काम का भुगतान करता है यानी दिहाड़ी या वेतन देता है। बाकी चार, पांच या छह घण्टे वह हमसे बेगार कराता है जो उसके लिए अतिरिक्त कमाई या मुनाफा बनता है।

एक दूसरे रूप में देखें। मान लीजिए कि इस देश में प्रति वर्ष चार लाख करोड़ रुपये यानी 40 खरब रुपये का उत्पादन होता है तो इसमें से कम से कम एक चौथाई यानी 10 खरब रुपये पूँजी बनकर पूँजीपतियों और उसकी सरकार की निजी मिल्कियत बन जाते है। बाकी 30 खरब रुपये में बँटवारा होता है। मोटे अनुमान के तौर पर इस वितरण को देखें।

तीस खरब का आधा यानी 15 खरब रुपये ऊपर के बीस फीसदी हिस्से की जेब में चला जाता है। इससे नीचे की 20 फीसदी के हिस्से में आमदनी का 20 फीसदी यानी 6 खरब रुपये आता है। यानी एक अरब आबादी में से 40 करोड़ आबादी के पास 21 खरब रुपये पहुँच जाते हैं, जबकि नीचे की 60 करोड़ आबादी के हिस्से में आया महज 9 खरब रुपये। कुल मिलाकर इस बँटवारे में पूरी मलाई, क्रीम और दूध का भारी हिस्सा ऊपर की मुट्ठी भर जमात के कब्जे में चला जाता है, जबकि नीचे की व्यापक मेहनतकश आबादी को बमुश्किल दूध का पानी मिल पाता है, वह भी थोड़ी मात्रा में।

अब आइए देश के सरकारी बजट पर गौर करें कि नियम कानून से खर्च होने वाले पैसे का वितरण कैसे होता है। यानी मेहनतकश जनता की गाढ़ी कमाई कहाँ पहुँचती है :-

- प्रत्यक्ष रूप से तनख्वाहों के रूप में, जिसका बड़ा हिस्सा नौकरशाहों-अफसरों के मोटे वेतन के रूप में जाता है।
- इस पूँजीवादी लुटेरी व्यवस्था की सुरक्षा के लिए पुलिस-फौज के भारी लवाजमात पर यानी सैन्य खर्च में।
- सरकार द्वारा दी गयी सब्सिडी के रूप में लाखों-करोड़ों के मालिक उद्योगपतियों तक।
- सरकारी ठेकों से होकर ठेकेदारों की आमदनी बनता है।
- विदेशों से रक्षा या अन्य सौदों के द्वारा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तक पहुँचता है।
- विदेशों से लिए गये कर्ज पर दिये जाने वाले सूद के रूप में विदेशी बैंकों और सरकारों तक पहुँचता है।

कानूनी लूट के इसी ढांचे के भीतर से गैर कानूनी लूट का जन्म होता है, वह फलती-फूलती है। यहीं से पैदा होने वाला नाजायज हजारों करोड़ रुपये मंत्रियों-सांसदों, बड़े नौकरशाहों और उनके विश्वासपात्रों, सटोरियों-दलालों की जेब में पहुँच जाते हैं। करोड़ों जनता की तबाही-बदहाली की कीमत पर मुनाफाखोरो-मुफ्तखोरों के ऐश्वर्य के टापू, विलासिता की मीनारें खड़ी हैं।

असली चुनाव
इस या उस
पूँजीवादी चुनावी पार्टी
के बीच नहीं
बल्कि
इंकलाबी राजनीति
और पूँजीवादी राजनीति
के बीच है।
चुन लो
चुनावी मृगमरीचिका में जीना है
या
इंकलाब की तैयारी की
कठिन राह पर चलना है?

इस पूरे ढांचे का विकल्प क्या है?
पूंजीवाद का नाश
मौजूदा निजाम के खिलाफ
आम बगावत।
जुल्म के खिलाफ मेहनतकशों
और आम लोगों की एकता!
इंकलाबी संगठन का निर्माण!
समाजवाद के उसूलों पर,
न्याय और समता पर आधरित
एक नये भारत का निर्माण!

कामरेड! रेफरी बनकर कितना फाउल बचाओगे!

सर्वहारा वर्ग के महान नेता लेनिन ने जिस पूँजीवादी संसद को सुअरबाड़ा कहा था, हमारे देश के संसदीय वामपंथी उसे ही पाक और पवित्र बनाने की कोशिश में अपना पूरा जोर लगाये बैठे हैं। इन कामरेडों की सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि वे जिस पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति का काम कर रहे हैं, उसकी विश्वसनीयता बरकरार रखकर कैसे जनता के मोहभ्रम को बनाये रखा जाये।

पिछले दिनों सांसदों के भ्रष्टाचार के खुलासे के बाद फँसे सांसदों पर आनन-फानन में कार्रवाई करने वाले, लोकसभा अध्यक्ष कामरेड सोमनाथ चटर्जी ने इस सुअरबाड़े में कुत्ता घसीटी के एक दृश्य पर हस्तक्षेप करते हुए और सदस्यों को डांटते हुए कहा कि हम लोगों की छवि बहुत खराब हो गयी है। हमें सदन की छवि ठीक करनी होगी।

लेकिन सोमनाथ बाबू, मैले की टंकी ढँकने से या इत्र लगाने से न तो सड़ाँध जायेगी और न ही बदबू। आपकी लाख कोशिशें आपके इस सुअरबाड़े को पाक साफ नहीं कर सकतीं। हाँ, आप जैसे कामरेडों का चेहरा जरूर बेनकाब होता जा रहा है। कामरेड, रेफरी बनकर कितना "फाउल" बचाओगे!

नये वर्ष में मज़दूर वर्ग के हिरावलों का आह्वान

(पेज 1 का शेष)

नौकरशाहों और संशोधनवादी पार्टियों के खुर्राटों के हाथ में रहता है और वे आन्दोलन के उन्हीं रूपों का इस्तेमाल करते हैं जो मूलतः उन्नीसवीं शताब्दी के ट्रेड यूनियन संघर्षों के दौरान पैदा हुए थे। आज ऐसे कुछ संघर्ष जीते जायें या हारे जायें, बुनियादी सवाल अपनी जगह पर ज्यों का त्यों मौजूद रहता है। प्रश्न झड़पों-मुठभेड़ों या चन्द एक लड़ाइयों का नहीं, एक पूरे युद्ध का है, श्रम और पूँजी के बीच युद्ध के एक नये दौर की रणनीति का है। परिस्थितियाँ जब बदलती हैं तो संघर्ष के तौर-तरीकों में बदलाव लाजिमी होता है। यह काम अभी नहीं हो सका है। इसका दायित्व सर्वहारा का नया क्रान्तिकारी हिरावल दस्ता ही निभा सकता है जो अभी संगठित नहीं हो सका है।

बुनियादी सवाल है मज़दूर वर्ग का राजनीतिक संघर्ष संगठित करना

आज मज़दूर हितों पर हमले का चरित्र देशव्यापी (और विश्वव्यापी भी) है, मज़दूर विरोधी नीतियों पर सभी पूँजीपतियों की आम सहमति है और सरकार चाहे जिस बुर्जुआ पार्टी या गठबन्धन की हो, राज्यसत्ता इन नीतियों को हर हाल में लागू करना चाहती है। यानी लड़ाई बुनियादी तौर पर राजनीतिक है, इसलिये इसे पूरी हुकूमत और समूचे पूँजीपति वर्ग के खिलाफ केन्द्रित करने का, संघर्षों के कारखाना केन्द्रित चरित्र को तोड़कर उन्हें इलाकाई पैमाने पर (और फिर अन्ततः पूरे देश के पैमाने पर) पूरी मज़दूर आबादी के बीच ले जाने का सवाल ही आज का केन्द्रीय प्रश्न हो सकता है। यही प्रश्न उनीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन का केन्द्रीय प्रश्न था और एक रूप में यह प्रश्न हमेशा ही मज़दूर आन्दोलन के सामने मौजूद रहता है जिसे हल करके ही मज़दूर वर्ग को राजनीतिक संघर्ष में उतारना और आन्दोलन को क्रान्तिकारी दिशा दे पाना सम्भव होता है। लेकिन आज, जब पूँजी और श्रम की शक्तियाँ युद्ध के अन्तिम निर्णायक दौर की दहलीज पर खड़ी हैं और पूँजी की शक्तियाँ पूरी तरह से एकजुट होकर चरम आक्रामकता प्रदर्शित कर रही हैं लेकिन श्रम की शक्तियाँ अभी नये युद्ध के लिए कत्तई तैयार नहीं हैं और निराशा एवं बिखराव की स्थिति में हैं, तो ऐसी स्थिति में उपरोक्त प्रश्न सर्वथा एक नये स्वरूप में, नयी अर्थवत्ता और नयी जटिलताओं के साथ हमारे सामने आ उपस्थित हुआ है। उदारीकरण -निजीकरण के मौजूदा दौर में सेवायोजन के तौर-तरीकों में आये बदलावों, पूरे औद्योगिक क्षेत्र के ढाँचागत परिवर्तनों और उत्पादन के तौर-तरीकों में आये बदलावों को देखते हुए, इस प्रश्न को केवल पुराने आजमाये नुस्खों के आधार पर हल नहीं किया जा सकता।

जरूरी है मज़दूर-गोलबन्दी की नयी रणनीति

आज हालात ये हैं कि न केवल छोटी-मंझोली औद्योगिक इकाइयों और पुराने परम्परागत उद्योगों में बल्कि आधुनिक कारखानों में भी धीरे-धीरे ज्यादा से ज्यादा काम दिहाड़ी, ठेका या पीस रेट पर हो रहे हैं। सभी औद्योगिक मज़दूरों में इन "असंगठित" मज़दूरों का हिस्सा सत्तर प्रतिशत हो चुका है। गौरतलब है कि इनमें से ज्यादातर शिक्षित युवा हैं। जिनमें पॉलिटेक्निक और आई.टी.आई. के प्रशिक्षित भी शामिल हैं। इन्हें न तो अकुशल कहा जा सकता है और न ही पिछड़ी चेतना का। भारत के इन नये सर्वहाराओं के बीच बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों की जमी-जमायी ट्रेड यूनियन दुकानदारियों की पैठ नहीं के बराबर है। उनका आधार बैंक, बीमा, डाक व रेल कर्मचारियों तथा सार्वजनिक क्षेत्र के बचे हुए कारखानों के स्थायी मज़दूरों या आजकल के मुख्यतः बड़े या आधुनिक निजी कारखानों के अपेक्षतया बेहतर जीवन स्तर वाले स्थायी मज़दूरों की छोटी सी संख्या के बीच ही है।

यदि मज़दूर आन्दोलन को क्रान्तिकारी दिशा देनी होगी तो हमें सर्वोपरि तौर पर अपना ध्यान भारत के इन नये सर्वहाराओं—अस्थायी, दिहाड़ी या ठेका मज़दूरों पर केन्द्रित करना होगा। इन्हें कारखाना गेटों के धरना-प्रदर्शनों से नहीं वरन संघर्ष के सर्वथा नये रूपों को अपनाकर जोड़ना होगा। इनके बीच सतत राजनीतिक प्रचार की कार्रवाई चलानी होगी। यह प्रक्रिया लम्बी और जटिल हो सकती है, लेकिन यहीं से नयी दिशा फूटने वाली है। यही आबादी औद्योगिक सर्वहारा आबादी की बहुसंख्या है और इसे ही सबसे अधिक निचोड़ा जा रहा है।

हम जोर देकर कहना चाहते हैं कि क्रान्तिकारी शक्तियों को अपना मुख्य ध्यान और मुख्य ताकत इसी बहुसंख्यक मज़दूर आबादी पर लगाना होगा जो प्रायः युवा और उन्नत सांस्कृतिक चेतना से लैस होने के बावजूद निकृष्टतम कोटि के उजरती मज़दूरों की जिन्दगी बसर कर रहे हैं। इन्हें इलाकाई पैमाने पर ही संगठित किया जा सकता है क्योंकि ये किसी एक कारखाने में काम नहीं करते होते। इन्हें आजीविका के अधिकार, भोजन-वस्त्र-आवास-शिक्षा-स्वास्थ्य जैसे बुनियादी नागरिक अधिकारों, ठेका प्रथा की समाप्ति, काम के घण्टों, छुट्टियों के प्रावधान, ओवर टाइम के दूने भुगतान आदि माँगों पर पूरे पूँजीपति वर्ग और उसकी हुकूमत के खिलाफ लामबन्द करने की प्रक्रिया काफी लम्बी होगी, पर यहाँ मज़दूरों की पेशागत संकुचित प्रवृत्ति और अर्थवाद का शिकार होने का खतरा नहीं होगा। यदि सर्वहारा आबादी के इस बहुलांश को नई लाइन पर संगठित करने का काम थोड़ा भी आगे बढ़ सका तो आसपास की व्यापक मज़दूर आबादी के समर्थन के चलते गुड़गाँव के होण्डा मज़दूरों या खटीमा के ईस्टर मज़दूरों जैसे संघर्षों की जीत की भी ज्यादा मुकम्मल गारण्टी होगी और तभी जाकर मज़दूरों के इस बेहतर जीवन स्थिति वाले संस्तर की चेतना के क्रान्तिकारीकरण की सम्भावना भी अधिक मजबूत हो सकेगी और तभी जाकर इन मज़दूरों को अर्थवादी ट्रेडयूनियनवादी धन्धेबाजों की गिरफ्त से भी मुक्त किया जा सकेगा।

सर्वहारा वर्ग के नये क्रान्तिकारी हिरावल दस्तों का निर्माण सर्वोच्च कार्यभार

पूँजीवाद आज ऐसे एक दौर में है कि वह अपने आखिरी विकल्प के तौर पर उदारीकरण की नीतियों को अपना रहा है और फिर भी मन्दी और अति उत्पादन के संकट से निजात पाने के बजाय उसमें और अधिक धँसता जा रहा है। इन नीतियों के नतीजे आने वाले दिनों में और भी अधिक व्यापक जन असन्तोष को जन्म देंगे। यह निश्चित है। साथ ही, यह भी निश्चित है कि उन्हें दबाने के लिये सत्ता काले कानूनों और पुलिसिया दमन तंत्र का और खुलकर इस्तेमाल करेगी। ऐसी स्थिति में मज़दूरों का प्रतिरोध एक व्यापक जनान्दोलन की शक्ल में फूट सकता है। लेकिन यह सम्भावना आशावाद से अधिक एक चुनौती के रूप में हमारे सामने है क्योंकि यह कभी भूला नहीं जाना चाहिए कि नेतृत्व देने वाले हिरावल दस्ते यदि तैयार न हों और उनके पास परिस्थितियों के अनुरूप रणनीति और रणकौशल की समझ न हो तो हर स्वतःस्फूर्त मज़दूर आन्दोलन, चाहे वह जितना भी जुझारू और व्यापक क्यों न हो, या तो पराजय और निराशा की नियति तक जा पहुँचता है या फिर उन्हीं पुराने अर्थवादियों-संशोधनवादियों के पीछे जा खड़ा होता है जो भितरघाती के रूप में मज़दूर आन्दोलन के सबसे खतरनाक और इतिहाससिद्ध दुश्मन हैं।

हमें देश के मज़दूर आन्दोलन के क्रान्तिकारी पुनरुत्थान के प्रयासों को विश्व सर्वहारा क्रान्ति के मौजूदा दौर के व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखकर ही आगे बढ़ना होगा। साम्राज्यवाद का यह नया दौर मज़दूर क्रान्तियों के अधिक उन्नत, अधिक सबल और अधिक सम्भावना-सम्पन्न रूपों के पैदा होने का दौर है। यह भारत और ऐसे तमाम पिछड़े देशों में, जो विश्व पूँजीवादी तंत्र की कमजोर कड़ियाँ हैं, साम्राज्यवाद और देशी पूँजीवाद विरोधी नई क्रान्तियों का दौर है। यह नई समाजवादी क्रान्तियों का दौर है। एकदम फौरी तौर पर यह इन नई क्रान्तियों की तैयारी का दौर है।

भारत में इस समाजवादी क्रान्ति की अगुवाई यहाँ का मज़दूर वर्ग करेगा—सबसे आगे औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की कतारें और फिर ग्रामीण सर्वहारा वर्ग की कतारें। सर्वहारा वर्ग ही पूरी आम मेहनतकश आबादी—मध्यम एवं गरीब किसानों तथा सभी तबाहहाल मध्यम वर्गों को पूँजी के जुवे से मुक्ति के संघर्ष में नेतृत्व देगा। लेकिन इतिहास का एक जरूरी सबक यह है कि सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के बिना सर्वहारा क्रान्ति असम्भव है। पूरे देश स्तर पर वैज्ञानिक समाजवादी विचारधारा के आधार पर आज के सन्दर्भों में मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन और माओ के विचारों के आधार पर और क्रान्ति के सही कार्यक्रम के आधार पर एक क्रान्तिकारी पार्टी संगठित किये बिना सर्वहारा वर्ग क्रान्ति सम्पन्न नहीं कर सकता, उसकी अगुवाई नहीं कर सकता।

लेकिन सोचने की बात यह है कि हमारे देश में, मज़दूर वर्ग की अखिल भारतीय स्तर की क्रान्तिकारी पार्टी, एक सच्ची बोल्शेविक पार्टी का निर्माण और गठन कैसे होगा ? उसकी प्रक्रिया क्या होगी ?

हमारे देश में इस समस्या का केन्द्रबिन्दु यह है कि ज्यादातर सर्वहारा क्रान्तिकारी तत्व भी इस केन्द्रीय तत्व को पकड़ नहीं पा रहे हैं कि नयी सर्वहारा क्रान्ति का हरावल दस्ता अतीत की राजनीतिक संरचनाओं को जोड़-मिलाकर संघटित नहीं किया जा सकता, बल्कि उसका नये सिरे से निर्माण करना होगा। यानी प्रधान पहलू पार्टी-गठन का नहीं बल्कि पार्टी-निर्माण का है। भारत में अब तक जिसे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर कहा जाता रहा है, वह मूलतः और मुख्यतः विघटित हो चुका है। विभिन्न ग्रुपों के बीच राजनीतिक बहस-मुबाहसा करके एकता बनाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए सर्वहारा वर्ग की एक सर्वभारतीय पार्टी पुनर्गठित कर पाने की प्रक्रिया विगत तीन दशकों के दौरान कहीं नहीं पहुँच सकी है। इसके बुनियादी कारण इस शिविर की और भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन के पूरे इतिहास की विचारधारात्मक कमजोरी में निहित रहे हैं, जो अलग से विस्तृत चर्चा की माँग करते हैं। कुछ कम्युनिस्ट संगठन संसदीय मार्ग के राही बनकर 'भूतपूर्व' विश्लेषण से लैस हो चुके हैं। कुछ ऐसे हैं जो मुँह से क्रान्ति और वर्ग संघर्ष की बात करते हुए राजनीतिक-सांगठनिक आचरण में सर्वथा सामाजिक-जनवादी दीख रहे हैं और अर्थवादी दलदल में गोते लगा रहे हैं तथा मेंशेविकों से भी घटिया ढंग से सांगठनिक गुंताड़े बिठा रहे हैं। कुछ "वामपंथी" दुस्साहसवाद की राह पर इतना आगे जा चुके हैं कि अब वापसी मुमकिन नहीं और कुछ "वामपंथी" दुस्साहसवाद और जुझारू अर्थवाद की विचित्र, बदबूदार अवसरवादी बिरयानी पका रहे हैं। ज्यादातर संगठन आज भी भूमि क्रान्ति का रट्टा मारते हुए जूते के हिसाब से पैर काटकर पंगु हो चुके हैं और धनी किसानों के आन्दोलनों के पुछल्ले, नरोदवाद के विकृत भारतीय संस्करण बन चुके हैं। कुछ मुक्त चिन्तकों के जमावड़े बन चुके हैं और कुछ रहस्यमय गुप्त सम्प्रदाय। शेष जो नेकनीयत हैं, उनकी स्थिति आज वामपंथी बुद्धिजीवी ग्रुपों से अधिक कुछ भी नहीं है।

भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुपों-संगठनों के कमजोर विचाराधारात्मक आधार, गलत सांगठनिक कार्यशैली और गलत कार्यक्रम पर अमल की आधी-अधूरी कोशिशों के लम्बे सिलसिले ने आज उन्हें इस मुकाम पर ला खड़ा किया है कि उनके सामने पार्टी के पुनर्गठन का नहीं, बल्कि नये सिरे से निर्माण का प्रश्न केन्द्रीय हो गया है। चीजें कभी अपनी जगह रुकी नहीं रहतीं। वे अपने विपरीत में बदल जाती हैं। आज अब्वलन तो विचारधारा और कार्यक्रम के विभिन्न प्रश्नों पर बहस-मुबाहसे से एकता कायम होने की स्थिति ही नहीं दीखती और यदि यह हो भी जाये तो एक सर्वभारतीय क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी नहीं बन सकती क्योंकि कुल मिलाकर, घटक संगठनों-ग्रुपों के बोल्शेविक चरित्र पर ही सवाल उठ खड़ा हुआ है। आज भी क्रान्तिकारी कतारों का सबसे बड़ा हिस्सा मा.ले. ग्रुपों—संगठनों के तहत ही संगठित है। यानी कतारों का कम्पोजीशन (संघटन) क्रान्तिकारी है, लेकिन नीतियों का कम्पोजीशन (संघटन) शुरू से ही गलत रहा है और उसमें विचारधारात्मक भटकाव गंभीर हो चुका है। इन्हीं नीतियों के वाहक नेतृत्व का कम्पोजीशन ज्यादातर संगठनों में आज अवसरवादी हो चुका है। इस नेतृत्व से 'पालिमिक्स' के जरिए एकता के रास्ते पार्टी-पुनर्गठन की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

भारतवर्ष में सर्वहारा क्रान्तिकारियों की जो नयी पीढ़ी इस सच्चाई की आँखों में आँखें डालकर खड़ा होने का साहस जुटा सकेगी, वही नई सर्वहारा क्रान्तियों के वाहक तथा नई बोल्शेविक पार्टी के घटक बनने वाले क्रान्तिकारी केन्द्रों के निर्माण का काम हाथ में ले सकेगी। वही नया नेतृत्व क्रान्तिकारी कतारों को एक नयी एकीकृत पार्टी के झण्डे तले संगठित करने में सफल हो सकेगा। इतिहास अपने को कभी हूबहू नहीं दुहराता और यह कि सभी तुलनाएँ लँगड़ी होती हैं—इन सूत्रों को याद रखते हुए हम कहना चाहेंगे कि मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी फिर से खड़ी करने में हमें अपनी पहुँच-पद्धति तय करते हुए रूस में कम्युनिस्ट आन्दोलन के उस दौर से काफी कुछ सीखना होगा, जो उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में गुजरा था। बोल्शेविज्म की स्पिरिट को बहाल करने का सवाल आज का सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल है।

पार्टी निर्माण के लिए जरूरी है मज़दूर वर्ग का एक क्रान्तिकारी राजनीतिक अखबार

'बिगुल' के प्रवेशांक में हमने मज़दूर वर्ग की एक क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने के लिये एक राजनीतिक अखबार की जरूरत के बारे में लिखा था। आज, जबकि एक सही-सच्ची बोल्शेविक पार्टी का निर्माण सर्वोच्च प्राथमिकता के कार्यभार के रूप में

(पेज 7 पर जारी)

मजदूर : महत्तम समापवर्तक

गणेशशंकर विद्यार्थी

(गणेशशंकर विद्यार्थी प्रखर राष्ट्रवादी पत्रकार और मजदूरों-किसानों के हक के लिए लड़ने वाले आन्दोलनकारी थे। घोषित रूप में गांधीवदी होते हुए भी भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारियों के वह समर्थक और मददगार थे। 13 अक्तूबर, 1919 को उनके अखबार 'प्रताप' में प्रकाशित इस लेख में मजदूर वर्ग के संघर्षों और श्रमिक-हड़तालों की ताकत को रेखांकित करते हुए विद्यार्थी मजदूरों में व्याप्त असन्तोष को सामाजिक क्रान्ति का स्रोत मानते हैं और बोल्शेविज्म को सामाजिक विकास के रूप में देखते हैं। –सं)

सामाजिक जीवन की कठिनाइयों ने इस समय संसार-भर के मजदूरों के हृदयों में अपरिमित असन्तोष भर दिया है। यूरोप इसी कारण से सामाजिक क्रान्ति का केन्द्र बन रहा है। जीवन-सम्बन्धी सुविधाओं की असमता ने गरीबों को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में ला पटका है और जब तक वे अपने उद्योगों में पूर्ण सफल नहीं हो जाते, संसार की शान्ति एक कोरी कल्पना है। सोलहवीं शताब्दी की यूरोपीय औद्योगिक क्रान्ति से आज तक यह समस्या हल नहीं हो पायी है। बहुसंख्यक जनता गरीब होती जा रही है, उसका सामाजिक जीवन कठिन होता जा रहा है, नैतिक विकास रुका हुआ है और उधर पूँजी लगाकर इन गरीबों के परिश्रम से लाभ उठाने वाले मालामाल हो रहे हैं। उनके यहाँ, एक खिदमतगार के स्थान पर चार-चार खिदमतगार नौकर हैं। बड़ी निर्दयता से वे गरीबों की कमाई को विलासिता के भोगों में खर्च करते हैं, पर तब भी उनकी सम्पत्ति पारस बनी हुई है। जीवन की इस असह्य विषमता ने ही सामाजिक क्रान्ति को जन्म दिया है, और आज के दिन इस सामाजिक क्रान्ति ने सारे संसार में अपने पैर पसार दिये हैं। इसके प्रभाव से मध्यम श्रेणी के मनुष्य भी जाग पड़े हैं। इस प्रकार मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को मिलाकर संसार में 95 फीसदी से अधिक सामाजिक क्रान्तिकारियों ने जन्म लिया है। आर्थिक क्षेत्र में दीन-हीन और सामाजिक जीवन की विषमता को अधिक सहन न कर सकने के कारण ही मजदूरों ने राजनीतिक उपायों का अवलम्बन किया था। सत्रहवीं शताब्दी में सामाजिक क्रान्ति ने शासन व्यवस्था के द्वार पर भी दस्तक दिया। गरीब मजदूरों ने अपनी आर्थिक असुविधा और सामाजिक विषमता से मुक्ति पाने के लिए देश के शासन में अपने प्रतिनिधियों का होना जरूरी समझा। बात भी ठीक थी। सरकारों की नकेल धनी लोगों के हाथों में थी, इसलिए मजदूरों की हड़तालों और क्रान्तियों को दाब देने के लिए वे सरकारी पशु-बल से मदद लेते थे। इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में पहले पूँजी वाले गए, मजदूर नहीं। सामाजिक क्रान्ति ने 'साम्यवाद' को जन्म दिया था, अब राजनीतिक भावों ने लोकसत्तात्मक शासन को विकास दिया।

अकेली गरीबी पर विजय पाने के लिए मजदूरों को कई क्षेत्रों में लड़ना पड़ रहा है। यूरोपीय मजदूरों ने इस भीषण संग्राम की मोर्चाबन्दी बड़ी दृढ़ता के साथ की है। प्रत्येक समूह की जुदा-जुदा प्रतिनिधि सभाएँ हैं। रेलवे कर्मचारियों की सभाएँ, मिलों में काम करने वालों की सभाएँ, खानों के मजदूरों की सभाएँ, पुलिस के कांस्टेबिलों की सभाएँ, रेलवे क्लर्कों की सभाएँ, गुण्डों की सभाएँ, ट्राम चलाने वालों की सभाएँ, गाड़ी हाँकने वालों की सभाएँ, आदि-आदि इनके अनेक नाम हैं। इन सभाओं का संचालन चन्दे और फण्डों की सहायता से होता है। लाखों और करोड़ों रुपये इन सभाओं के रिजर्व फण्ड में रहते हैं। सिर्फ इसलिए कि अगर हड़ताल करनी पड़े तो, उतनी अवधि तक मजदूरों को खाने-पहरने के लिए सहायता दी जा सके। इंग्लैण्ड में इस किलाबन्दी की दृढ़ता सबसे चढ़ी-बढ़ी है। इसीलिए अंग्रेजी मजदूरों से देश की पूँजीवाले और ब्रिटिश सरकार डरती रहती है। पिछले दिनों में जब खान और फैक्ट्रियों में काम करने वालों ने भीषण हड़ताल कर दी थी, तब भी ब्रिटिश सरकार को नीचा देखना पड़ा था। अपनी जीत के लिए ही विलायती मजदूरों ने एक नया संगठन किया है। इसका नाम है 'त्रिगुट' अर्थात (Triple Allies)। इस त्रिगुट में खान वाले, फैक्ट्रियों वाले तथा रेलवे वाले कर्मचारी यानी श्रमजीवी शामिल हैं। समवायवाद (Syndicalism) की यह एक दृढ़ सीढ़ी है। इस सिद्धान्त का एक उपदेश यह भी है कि यदि एक समूह हड़ताल कर दे तो उसकी सफलता के लिए अन्य समूह वाले भी हड़ताल कर दें। समवायवादिनी हड़तालें एक प्रकार की शान्त क्रान्तियाँ हैं। उनसे देश के कारबार–रेल, जहाज, कल-कारखाने, गाड़ी, घोड़े, मोटरें, ट्राम, तार, डाक आदि बन्द हो जाते हैं। बहुतेरे स्थानों पर लोग खाद्य-सामग्री न पा सकने के कारण भूखों मरने लगते हैं। और सर्वसाधारण की इस तकलीफ और असुविधा का दोष सरकार के मत्थे मढ़ा जाता है। बहुधा इस दुरवस्था में पड़कर यूरोप की अनेक सरकारों को नीचा देखना पड़ा है। उनकी निरंकुशता और सम्पत्तिवाद को ठेस लगी है, परन्तु साथ ही, देश के शासन में लोकसत्ता का विकास हुआ है।

विगत सप्ताह ही की बात है। इंग्लैण्ड के रेलवे श्रमजीवियों ने वेतन के झगड़े के कारण भीषण हड़ताल कर दी थी। देश-भर की रेलें एक साथ खड़ी रह गईं, लाखों यात्री जहाँ के तहाँ पड़े रह गए। लन्दन में, खाद्य-सामग्री का अकाल-सा पड़ गया, बाहर से आने वाली दूध, अनाज आदि सामग्री के टोटे से बड़ा कष्ट सहना पड़ा। सरकार को रेलवे यात्रियों को मोटरों पर चढ़ाकर यथास्थान भेजना पड़ा, हवाई जहाजों पर दूध और मक्खन लाद कर बाहर से मंगाना पड़ा। हाइड पार्क में मोटरों का स्टेशन और खाद्य-सामग्री का बाजार खोलना पड़ा। तिस पर भी पोस्ट-मास्टर जनरल ने 8 दिन तक पार्सलें नहीं लीं। यदि कहीं 'त्रिगुट' वाले भी इस हड़ताल में शामिल हो जाते तो देश-भर में हाहाकार मच जाता, लाखों आदमी भूखों मरने लगते। मि. लायड जार्ज जो पहले शान में आकर 'रेलवे मेंस यूनियन' की बात तक नहीं सुनना चाहते थे, नीचे झुके। अन्त में उन्हें वचन देना पड़ा कि रेलवे श्रमजीवियों को प्रति सप्ताह कम-से-कम 51 शिलिंग (एक शलिंग = बारह आने) यानी 6 रु. 6 आने नित्य मिला करेंगे। इस प्रकार रेलवे श्रमजीवियों ने इंग्लैण्ड की 'लायड जार्जियन' सरकार पर विजय प्राप्त की।

परन्तु बातें इतनी ही नहीं हैं। यूरोपीय महायुद्ध तथा रूसी राज्यक्रान्ति ने इस सामाजिक आन्दोलन का नए सिरे से संशोधन किया है। लोग इसे 'बोल्शेविज़्म' का नाम देकर कहकहा लगाते हैं। स्वयं मि. लायड जार्ज ने उस दिन कहा था कि 'यह हड़ताल उन कुछ थोड़े से लोगों का षड्यंत्र है जो सरकार को उलट देना चाहते हैं।' वास्तव में बात ऐसी नहीं है। मजदूर लोग फिलहाल अपनी दीन-हीन दशा का सुधार करना चाहते हैं। उनके लिए वर्त्तमान आर्थिक और सामाजिक विषमता असह्य है। परन्तु जब मि. लायड जार्ज उनकी हड़तालों को 'षड्यंत्र' के नाम से पुकार सकते हैं तो यदि वे भी यह सोचने लगे जायें कि मि. लायड जार्ज भी 40 शिलिंग प्रति सप्ताह लेकर इंग्लैण्ड की प्राइम मिनिस्टरी किया करें तो क्या बेजा है! बोल्शेविज़्म तो यही कहता है और यदि मिसेज पेंकहर्स्ट का कहना गलत नहीं है तो मोशिये लेनिन भी रूसी मजदूरों की भाँति 40 शिलिंग ही के लगभग प्रति सप्ताह पाते होंगे। हमारा विश्वास है कि मि. लायड जार्ज इस समझौते पर राजी नहीं होंगे और इसीलिए इंग्लैण्ड से, अथवा उन देशों से जहाँ की सरकारें स्वच्छन्द हैं, सामाजिक क्रान्ति मिट नहीं सकती और मजदूर लोग यानी गरीब जनता उद्देश्य-सिद्धि की अन्तिम परिधि तक लड़ती जायेगी।

मि. लायड जार्ज सरीखे लोगों और गरीब जनता के विचारों में बहुत बड़ा अन्तर है। जिसे वे 'बोल्शेविज़्म' समझते हैं, गरीब लोग उसे सामाजिक विकास समझते हैं, और जिसे वे 'षड्यंत्र' समझते हैं, असल में वह लोकसत्ता के स्थापन करने की एक सीढ़ी है।

नये वर्ष में मज़दूर वर्ग के हिरावलों का आह्वान

(पेज 6 का शेष)

हमारे सामने उपस्थित है तो हम एक बार फिर उस जरूरत को और अधिक जोर के साथ रेखांकित करना चाहते हैं।

आज बेहद जरूरी है मज़दूर वर्ग का एक ऐसा राजनीतिक अखबार, जिसकी पहुँच महज कम्युनिस्ट संगठनों के कार्यकर्त्ताओं या मध्यम वर्ग के क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों तक सीमित न होकर व्यापक मेहनतकश आबादी तक हो। भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार की जरूरत पहले के तमाम दौरों के मुकाबले कई गुना ज्यादा बढ़ गयी है। आज मज़दूर वर्ग के भीतर हताशा-निराशा जितनी गहरी है, अर्थवाद की बीमारी ने जितने गहरे तक अपनी जड़ें जमायी हुई हैं और पूँजीवादी सत्ता के पास मज़दूर वर्ग के मानसिक-सांस्कृतिक अनुकूलन के जितने कारगर साधन और नयी क्षमताएँ हासिल हुई हैं, उसे देखते हुए मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षण का काम बेहद चुनौती भरा हो गया है। आज यह लेनिन के समय से भी कई गुना अधिक जटिल और चुनौती भरा हो गया है। ऐसे में, स्वतः यह समझा जा सकता है कि मज़दूर वर्ग के एक क्रान्तिकारी राजनीतिक अखबार का होना कितना जरूरी है। मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार की उपरोक्त चुनौतियों-समस्याओं के साथ आज के दौर में एक अनुकूल वस्तुगत आधार भी तैयार हुआ है। असेम्बली लाइन को बिखरा देने और अधिकांश काम ठेका और दिहाड़ी पर कराने के नये चलन के चलते आज मज़दूर वर्ग एक वर्ग के रूप में समूचे मालिक वर्ग, उसकी सरकार और समूची राज्यसत्ता के सामने खुद को खड़ा पा रहा है। कारखाने पर केन्द्रित रहने और पेशागत-संकुचित मनोवृत्ति का भौतिक आधार खिसकता जा रहा है। इस अनुकूल स्थिति का लाभ उठाकर मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार व शिक्षण की कार्रवाई तेज करने में मज़दूरों के राजनीतिक अखबार की भूमिका कितनी कारगर हो सकती है, इसे आसानी से समझा जा सकता है।

मज़दूरों के इस क्रान्तिकारी राजनीतिक अखबार को राजनीतिक प्रचारक और शिक्षक और आह्वानकर्ता ही नहीं वरन् क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भूमिका भी निभानी होगी। तभी यह सर्वहारा वर्ग की कतारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम को बखूबी अंजाम दे सकेगा। कहने की जरूरत नहीं कि मज़दूर अखबार अपने आप नहीं बल्कि मज़दूर संगठनकर्ताओं के माध्यम से ही संगठनकर्ता की भूमिका निभा सकता है।

सर्वहारा वर्ग की व्यापक आबादी को सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से परिचित कराना इस अखबार का एक अहम कार्यभार होना चाहिए। लेकिन इसके साथ ही भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और उसकी ठोस समस्याओं से भी लगातार परिचित कराना होगा जिससे वे सही लाइन के इर्द-गिर्द गोलबन्द हो सकें और एक सही-सच्ची बोल्शेविक पार्टी के निर्माण की प्रक्रिया में शामिल हो सकें।

हम एक बार फिर दुहराना चाहेंगे कि मज़दूरों के राजनीतिक अखबार को समसामयिक राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय घटनाक्रमों के वैज्ञानिक विश्लेषण के साथ ही विश्व सर्वहारा क्रान्ति के प्रथम चक्र के ऐतिहासिक अनुभवों, उसकी शिक्षाओं व सबकों से मज़दूरों को परिचित कराना एक अहम कार्यभार होना चाहिए जिससे वे मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी विचारधारा की पुख्ता जमीन पर खड़े हो सकें और नई सर्वहारा क्रान्ति के कार्यभारों को सफलतापूर्वक अंजाम दे सकें।

हमने एक मासिक 'बुलेटिन' के रूप में बिगुल के प्रकाशन की शुरुआत इन्हीं जिम्मेदारियों और कार्यभारों के एहसास के साथ की थी। हमने जितनी जल्दी हो सके 'बिगुल' को हर पखवाड़े और हर हफ्ते निकालने का लक्ष्य अपने सामने रखा था। हम अभी भी उस लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाये हैं। दरअसल, एक पाक्षिक या साप्ताहिक निकालने के लिए आवश्यक मानवीय और तकनीकी संसाधनों-सरंजामों एवं अन्य व्यावहारिक जरूरतों के बारे में उस समय हमने किंचित अतिउत्साही मूल्यांकन कर लिया था। लेकिन हम पूरी कोशिश में हैं कि यथाशीघ्र उस लक्ष्य तक पहुँचा जायें क्योंकि तभी 'बिगुल' अपनी जिम्मेदारियों को कारगर ढंग से निभा सकता है।

नये साल के अवसर पर हम अपना संकल्प फिर दुहरा रहें हैं और मज़दूरों के क्रान्तिकारी हिरावलों का आह्वान करते हैं कि वे मज़दूर वर्ग की सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण में प्राणपण से जुट जायें।

दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

परिकल्पना प्रकाशन, राहुल फाउण्डेशन और अनुराग ट्रस्ट की नयी प्रकाशित किताबें

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

1. वे तीन – मक्सिम गोर्की 75.00
2. मेरा बचपन – मक्सिम गोर्की 70.00
3. जीवन की राहों पर – मक्सिम गोर्की 80.00
4. मेरे विश्वविद्यालय – मक्सिम गोर्की 50.00
5. फोमा गोर्देयेव – मक्सिम गोर्की 55.00
6. गोदान – प्रेमचन्द 75.00
7. निर्मला – प्रेमचन्द 40.00
8. पथ के दावेदार – शरत्चन्द्र 70.00
9. चरित्रहीन – शरत्चन्द्र 80.00
10. गृहदाह – शरत्चन्द्र 70.00
11. शेषप्रश्न – शरत्चन्द्र 70.00
12. तूफ़ान – अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच 60.00
13. इन्द्रधनुष – वांदा वसील्युस्का 65.00
14. इकतालीसवाँ – बोरिस लाव्रेन्योव 20.00
15. दास्तान चलती है – अनातोली कुज्नेत्सोव 70.00
16. वे सदा युवा रहेंगे – ग्रीगोरी बकलानोव 60.00
17. मुर्दों को क्या लाज-शर्म – ग्रीगोरी बकलानोव 40.00
18. बख़्तरबन्द रेल 14-69 – व्सेवोलोद इवानोव 30.00
19. अश्वसेना – इसाक बाबेल 40.00
20. लाल झण्डे के नीचे – लाओ श 50.00
21. रिक्शावाला – लाओ श 65.00

कहानियाँ

1. वसन्त – सेर्गेई अन्तोनोव 60.00
2. वसन्तागम – रओ शि 60.00
3. सूरज का ख़ज़ाना – मिखाईल प्रीश्विन 40.00
4. स्नेगोवेत्स का होटल – मत्वेई तेवेल्योव 35.00
5. वसन्त के रेशम के कीड़े – माओ तुन 50.00
6. क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00
7. चुनी हुई कहानियाँ – श्याओ हुङ 50.00
8. समय के पंख – कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी 30.00
9. श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ 75.00
10. लाल कुरता – हरिशंकर श्रीवास्तव 35.00

कविताएँ

1. जेल डायरी – हो ची मिन्ह 45.00
2. ओस की बूँदें और लाल गुलाब – होसे मारिया सिसों 25.00
3. कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना – शशिप्रकाश 50.00
4. पतझड़ का स्थापत्य – शशिप्रकाश 75.00
5. फुटपाथ पर कुर्सी – कात्यायनी 80.00
6. पाब्लो नेरूदा की कुछ कविताएँ – अनु. रामकृष्ण पाण्डेय 30.00

नाटक

1. करवट – मक्सिम गोर्की 35.00
2. तीन बहनें (दो नाटक) – चेखव 45.00
3. चेरी की बगिया (दो नाटक) – चेखव 45.00
4. क्रेमलिन की घण्टियाँ – निकोलाई पोगोदिन 40.00
5. बलिदान जो व्यर्थ नहीं गया व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 40.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त – कात्यायनी 90.00

व्यंग्य

1. कहें मनबहकी खरी-खरी – मनबहकी लाल 25.00

साहित्य-विमर्श

1. उपन्यास और जनसमुदाय – रैल्फ फ़ॉक्स 60.00
2. लेखनकला और रचनाकौशल – गोर्की, फेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय 70.00

नई पीढ़ी के निर्माण के लिए

1. एक पुस्तक माता-पिता के लिए – अन्तोन मकारेन्को 80.00
2. मेरा हृदय बच्चों के लिए – वसीली सुख़ोम्लीन्स्की 75.00

शीघ्र प्रकाश्य

1. चुनी हुई कहानियाँ – मक्सिम गोर्की खण्ड 3 व 4
2. तरुणाई का तराना (उपन्यास) – याङ मो
3. तीन टके का उपन्यास – बेर्टोल्ट ब्रेष्ट
4. नन्ही बेस्सी और अन्य कहानियाँ – मार्क ट्वेन
5. वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया – मार्क ट्वेन

राहुल फाउण्डेशन

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

1. भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़ 175.00
2. शहीदेआज़म की जेल नोटबुक – भगतसिंह 65.00
3. विचारों की सान पर – भगतसिंह 25.00

क्रान्तिकारियों के विचारों और जीवन पर

1. क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास – शिव वर्मा 10.00
2. भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति – बिपन चन्द्र 10.00
3. अमर शहीद सरदार भगतसिंह – जितेन्द्रनाथ सान्याल 70.00
4. यश की धरोहर – भगवानदास माहौर, सदाशिवराव मलकापुरकर, शिव वर्मा 30.00
5. भगतसिंह और उनके साथी – अजय घोष, गोपाल ठाकुर 30.00
6. संस्मृतियाँ – शिव वर्मा 50.00
7. इक्कीसवीं सदी में भगतसिंह – रविभूषण 10.00
8. भगतसिंह : अनवरत जलती मशाल – राजकुमार राकेश, मनोज शर्मा 10.00
9. शहीद सुखदेव : नौघरा से फाँसी तक 25.00

महत्वपूर्ण और विचारोत्तेजक संकलन

1. उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है ('दायित्वबोध' के महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन) 60.00
2. एनजीओ : एक खतरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र 30.00
3. डब्ल्यूएसएफ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हार्स 50.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

1. अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ – दीपायन बोस 10.00
2. समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति – शशि प्रकाश 12.00
3. क्यों माओवाद – शशि प्रकाश 10.00

मार्क्सवाद

2. साहित्य और कला – मार्क्स-एंगेल्स 150.00
3. फ्रांस में वर्गसंघर्ष – कार्ल मार्क्स 40.00
4. फ्रांस में गृहयुद्ध – कार्ल मार्क्स 20.00
5. लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर – कार्ल मार्क्स 35.00
6. उजरती श्रम और पूँजी – कार्ल मार्क्स 10.00
7. मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा – कार्ल मार्क्स 15.00
8. गोथा कार्यक्रम की आलोचना – कार्ल मार्क्स 10.00
9. लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त – फ्रेडरिक एंगेल्स 20.00
10. जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति – फ्रेडरिक एंगेल्स 30.00
12. पार्टी कार्य के बारे में – लेनिन 25.00
13. एक क़दम आगे दो क़दम पीछे – लेनिन 60.00
14. जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियाँ – लेनिन 25.00
31. जुझारू भौतिकवाद – प्लेख़ानोव 35.00
46. लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने – लीदिया फ़ोतियेवा 50.00
47. मार्क्सवाद क्या है – एमिल बर्न्स 20.00

राहुल साहित्य

1. तुम्हारी क्षय – राहुल सांकृत्यायन 15.00
2. दिमाग़ी गुलामी – राहुल सांकृत्यायन 15.00
3. वैज्ञानिक भौतिकवाद – राहुल सांकृत्यायन 50.00
4. राहुल निबन्धावली – राहुल सांकृत्यायन 50.00
5. स्तालिन : जीवनी – राहुल सांकृत्यायन 75.00

परम्परा का स्मरण

1. चुनी हुई रचनाएँ – गणेशशंकर विद्यार्थी 75.00
2. सलाखों के पीछे से – गणेशशंकर विद्यार्थी 30.00
3. ईश्वर का बहिष्कार – राधामोहन गोकुलजी 15.00
4. लौकिक मार्ग – राधामोहन गोकुलजी 15.00
5. धर्म का ढकोसला – राधामोहन गोकुलजी 15.00
6. स्त्रियों की स्वाधीनता – राधामोहन गोकुलजी 15.00

विविध

1. छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें 10.00
2. फाँसी के तख़्ते से – जूलियस फ़्यूचिक 30.00
3. पाप और विज्ञान – डायसन कार्टर 60.00
4. सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है? – लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर 25.00
5. सृजनशीलता हमेशा सामाजिक होती है – एज़ाज़ अहमद 5.00

Rahul Foundation

English Publications

1. The Communist Manifesto – Marx-Engels 25.00
2. The Civil War in France – Karl Marx 25.00
3. Class Struggles in France – Karl Marx 45.00
4. The Origin of Family, Private Property and the State – Frederick Engels 50.00
5. One Step Forward, Two Steps Back – Lenin 70.00
6. The State and Revolution – Lenin 30.00
7. Fundamental Problems of Marxism – Plekhanov 30.00
8. The Foundations of Leninism – Stalin 30.00
9. Marxism and Problems of Linguistics – Stalin 20.00
10. Selected Readings – Mao Tse-Tung 75.00
11. Quotations from the Writings of Mao Tse-Tung 40.00
12. Readers Guide to Marxist Classics – Maurice Cornforth 50.00
13. The Great Reversal – William Hinton 70.00
14. An Appeal to the Young – Peter Kropotkin 10.00

शीघ्र प्रकाश्य

1. धर्म के बारे में – मार्क्स-एंगेल्स
2. राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना में योगदान – मार्क्स
3. परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्यसत्ता की उत्पत्ति – एंगेल्स
4. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद – डेविड गेस्ट
5. Student's Marx – Edward Aveling
6. Basic Understanding of the Party

अनुराग ट्रस्ट बाल साहित्य

1. दान्को का जलता हुआ हृदय – मक्सिम गोर्की 15.00
2. नन्हा राजकुमार – आतुआन द सैंतेग्ज़ूपेरी 40.00
3. दादा आखिप और ल्योंका – मक्सिम गोर्की 30.00
4. सेमागा कैसे पकड़ा गया – मक्सिम गोर्की 15.00
5. बाज़ का गीत – मक्सिम गोर्की 15.00
6. वांका – अन्तोन चेखव 15.00
7. तोता – रवीन्द्रनाथ टैगोर 15.00
8. पोस्टमास्टर – रवीन्द्रनाथ टैगोर 15.00
9. काबुलीवाला – रवीन्द्रनाथ टैगोर 15.00
10. अपना-अपना भाग्य – जैनेन्द्र 15.00
11. हमारा दिमाग़ कैसे काम करता है – किशोर 20.00
12. रामलीला – प्रेमचन्द 15.00
13. दो बैलों की कथा – प्रेमचन्द 20.00
14. ईदगाह – प्रेमचन्द 20.00
15. लॉटरी – प्रेमचन्द 20.00
16. गुल्ली-डण्डा – प्रेमचन्द 10.00
17. बड़े भाई साहब – प्रेमचन्द 15.00
18. मोटेराम शास्त्री – प्रेमचन्द 20.00
19. हार की जीत – सुदर्शन 15.00
20. इवान – व्लादीमिर बोगोमोलोव 40.00
21. चमकता लाल सितारा – ली शिन-थ्येन 50.00
22. उल्टा दरख़्त – कृश्नचन्दर 35.00
23. हरामी – मिखाईल शोलाख़ोव 25.00
24. दोन किहोते – सर्वान्तेस (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 20.00
25. आश्चर्यलोक में एलिस – लुइस कैरोल (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 25.00
26. रानी लक्ष्मीबाई – वृन्दावनलाल वर्मा (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 25.00
27. ज़िन्दगी से प्यार (साहसिक कहानियाँ) – जैक लण्डन 30.00
28. गुदड़ी लाल के कारनामे – सुन याओ च्युन 40.00

पूरी सूची और किताबें मँगाने के लिए सम्पर्क करें

जनचेतना

डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020

फोन : 0522-2786782

ईमेल : janchetna@rediffmail.com

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की दो कविताएँ

डाक्टर के सामने एक कामगार का बयान

हमें पता है, हम कैसे बीमार पड़ते हैं!
जब हम बीमार होते हैं, बताया जाता है
कि तुम ही हो, जो हमारा इलाज करोगे।

दस साल तक–कहा जाता है
मेहनत से तुमने पढ़ाई की है
जनता के पैसों से बने स्कूलों में
ताकि तुम इलाज कर सको और अपनी तालीम के लिए
तुमको भी खर्च करना पड़ा है।
यानी कि तुम इलाज कर सकते हो।

कर सकते हो तुम इलाज?

जब हम तुम्हारे पास आते हैं
हमारे चीथड़े उतार लिये जाते हैं
और तुम हमारे नंगे बदन को ठोंक-ठोंककर जाँचते हो।
पर हमारी बीमारी की वजह जानने के लिए
उन चीथड़ों पर एक नजर डालना ही काफी रहा होता।
वजह एक ही है
हमारे तन और हमारे कपड़ों के हाल की।

हमारे कन्धों का गठिया
कहते हो तुम, नमी की वजह से है,
उसी की वजह से हमारे कमरों में धब्बे पड़ गये हैं।
जरा यह तो बताओ:
यह नमी कहाँ से आती है?

मेहनत बहुत अधिक और खाना कम
और इस तरह हम कमजोर और दुबले पड़ गये हैं।
तुम्हारा नुस्खा है :
हमें अपना वजन बढ़ाना है।
फिर तुम सरकण्डे से भी कह सकते हो
उसे पानी से परहेज रखना है।

हमारी खातिर वक्त ही कितना है तुम्हारे पास?
हम तो देखते ही हैं : तुम्हारे कमरे के एक गलीचे की कीमत
लगभग उतनी ही है, जितनी कि तुम
हमारी पाँच हजार बीमारियों से कमा लेते हो।
शायद तुम कह सकते हो, गलती तुम्हारी नहीं है। हमारे कमरे में
दीवार पर पड़ा धब्बा भी
ऐसा ही कहा करता है।

1938

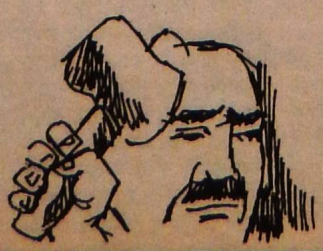

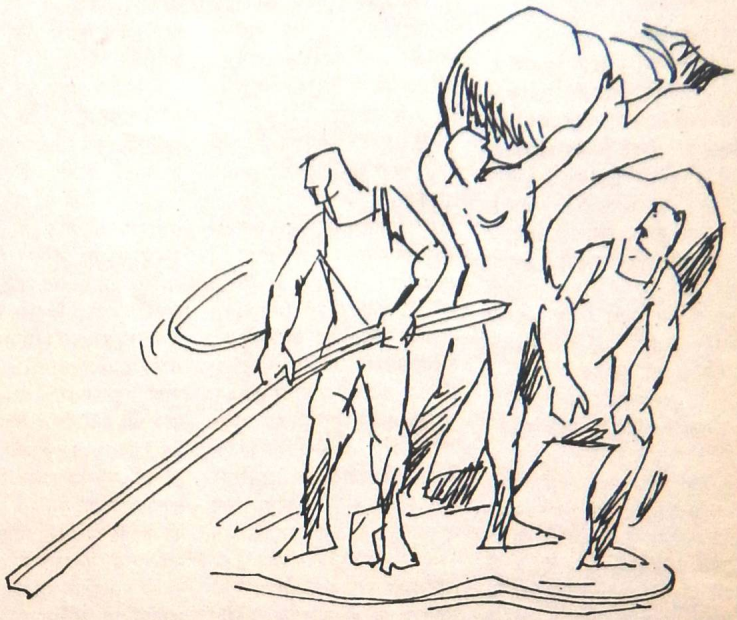

एक पढ़ सकने वाले कामगार के सवाल

किसने बनाया सात द्वारों वाला थीब?
किताबों में लिखे हैं सम्राटों के नाम।
क्या सम्राट पत्थर ढो-ढोकर लाये?
और बार-बार विनष्ट बैबीलोन
किसने उसे हर बार फिर से बनाया? किन घरों में
रहते थे सोना जैसे चमकते लीमा के मजूरे?
कहाँ बिताई शाम, जब चीन की दीवार बनकर खत्म हुई,
उसके राजगीरों ने? महान रोम
भरा पड़ा है विजय तोरणों से। किसने उन्हें खड़ा किया? किस पर
हासिल की सीजरों ने जीत? चारणगीत समृद्ध बैंजटियम में
क्या महल ही महल थे वहाँ रहनेवालों के लिए?
दन्तकथा के अटलाण्टिस में भी
उस रात, जब समन्दर उसे निगल गया,
चीखे होंगे डूबनेवाले अपने गुलामों की खातिर।

नौजवान सिकन्दर ने भारत जीता।
अकेले उसने?
सीजर ने गॉलों को मात दी।
क्या उसके साथ एक रसोइया तक न था?
स्पेन का फिलिप रोता रहा, जब उसका बेड़ा
तहस-नहस हो गया। और कोई नहीं रोया?
सातसाला जंग में फ्रीडरिष द्वितीय की जीत हुई। जीता कौन
उसके अलावा?
हर पन्ने पर एक जीत।
किसने पकाए जीत के भोज?
हर दस साल पर एक महान पुरुष
किसने चुकाए उनके हिसाब?
इतनी सारी रपटें
इतने सारे सवाल।

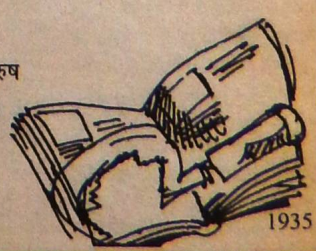

1935

विश्व सर्वहारा को अपनी कतारबन्दियाँ तेज करनी होंगी!!

(पेज 16 का शेष)

खुलकर सामने आ रहे हैं। जन-असन्तोष की दिशा भटकाने के लिये अमेरिकी सत्ताधारी समाज में मौजूद नस्लवादी भावनाओं को भी हवा दे रहे हैं। पूँजीवादी जनतंत्र के 'जन्नत' की जहन्नुमी हकीकत यह हो चुकी है कि वहाँ आतंकवादियों के हमलों से सुरक्षा के नाम पर निजता के अधिकार की धज्जी उड़ाते हुए नागरिकों के फोन टेप कराये जा रहे हैं। यह सब इसी सच्चाई का प्रमाण है कि अमेरिकी साम्राज्यवादियों के अन्तःपुरों में खलबली मची हुई है।

उधर यूरोपीय साम्राज्यवादियों के घरों का हाल-चाल भी अच्छा नहीं है। पेरिस के उपनगर एक पखवाड़े से अधिक समय तक जलते रहे। नौजवानों की यह स्वतः स्फूर्त बगावत फिलहाल शान्त हो चुकी है लेकिन इससे फ्रांसीसी हुक्मरान कितने डर गये थे इसका अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि इस बगावत को कुचलने के लिये उन्हें औपनिवेशिक दौर के काले कानून को झाड़-पोंछकर बाहर निकालना पड़ा। फ्रांस में बढ़ती बेरोजगारी से खौफजदा फ्रांसीसी हुकूमत के कई मंत्री खुले आम नस्लवादी जहर उगल रहे हैं। पेरिस के उपनगरों में नौजवानों की बगावत के पीछे फ्रांसीसी गृहमंत्री के एक नस्लवादी बयान की भी अहम उत्प्रेरक भूमिका रही है। हालाँकि इस बगावत के मूल में फ्रांसीसी उद्योगों का बढ़ता संकट ही था जिसके कारण वहाँ भारी पैमाने पर छँटनी-तालाबन्दी जारी है और रोजगार के अवसरों का टोटा पड़ता जा रहा है। यूरोप के दो अन्य प्रमुख देशों ब्रिटेन और जर्मनी के हालात भी कमोबेश ऐसे ही हैं।

उधर अमेरिकी साम्राज्यवादी युद्ध सरदारों के खेमे में बढ़ती बेचैनी की एक नयी वजह पैदा हो गयी है। उसके ऐन पिछवाड़े के हालात से। लगभग समूचा लैटिन अमेरिका इन दिनों अमेरिकी मंसूबों के खिलाफ नाफरमानी का झण्डा उठाये हुए है। वेनेजुएला में ह्यूगो शावेज के सत्तारूढ़ होने के बाद फिदेल कास्त्रो को लैटिन अमेरिका में अमेरिकी वर्चस्व को चुनौती देने वाला एक और सहयोगी मिल गया था। उरुग्वे व इक्वेडोर की नवनिर्वाचित सामाजिक जनवादी सरकारें भी हिचकते हुए, आगा-पीछा देखते हुए ही सही, कास्त्रो-शावेज की जोड़ी के साथ समर्थन जता रही हैं। अमेरिकी हुक्मरान कास्त्रो-शावेज की जोड़ी की चुनौती से निपटने की तरकीबें निकालने में जुटे ही हुए थे कि बोलिविया में ईवो मोरालेस के राष्ट्रपति चुने जाने की खबर ने उन्हें और बेचैन कर दिया है। ईवो मोरालेस को सत्ता में न आने देने के लिये उन्होंने कोई कोर-कसर बाकी न छोड़ी थी लेकिन इस देश में साम्राज्यवादी लुटेरों की खूनी कारगुजारियों के खिलाफ जनता का आक्रोश इतना प्रचण्ड था कि इस लहर पर सवार होकर ईवो मोरालेस आखिरकार सत्ता तक जा पहुँचे हैं। अब अमेरिकी सत्ताधारी इस कोशिश में हैं कि मोरालेस को कास्त्रो-शावेज जोड़ी के साथ मिलकर एक तिकड़ी न बनाने दिया जाये और वे ब्राजील के लूला डिसिल्वा की तरह जनाकांक्षाओं के साथ विश्वासघात करके समझौतापरस्ती की राह पर चल पड़ें। ईवो मोरालेस न तो सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि हैं और न ही सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी विचारधारा मार्क्सवाद में उनका यकीन है। वे सदियों से शोषित उत्पीड़ित बोलिविया की मूलनिवासी बहुसंख्यक आबादी—पहले उपनिवेशवादी शोषण उत्पीड़न फिर नव-औपनिवेशिक और पिछले दो दशकों से अमेरिकी साम्राज्यवाद की तथाकथित 'नव उदारवादी' नीतियों द्वारा शोषित उत्पीड़ित—की राष्ट्रीय आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने वाले और अमेरिकी साम्राज्यवाद के सामरिक-आर्थिक वर्चस्व के विरोधी हैं। उनका एजेण्डा पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली और राज्यसत्ता की बुनियादी संरचना को बदलना नहीं बल्कि ऐसे सुधार करना है जिससे मूल निवासी एमारा और बेचुआ जातियों को हाशिये से उठाकर आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की मुख्य धारा में ला खड़ा किया जा सके। लेकिन मोरालेस का यह सुधारवादी एजेण्डा भी अमेरिकी साम्राज्यवादियों की परेशानी का खासा सबब बना हुआ है। मोरालेस किस पाले में जाकर खड़े होते हैं इसके बारे में अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। दोनों सम्भावनाओं—ब्राजील के लूला का समझौतावादी रास्ता और कास्त्रो-शावेज का रास्ता—में से किस रास्ते पर चलेंगे इसे तय करने में लैटिन अमेरिका के अन्य देशों—चिली, पेरू व निकारागुआ, खासकर चिली में होने वाले चुनावों के नतीजे भी प्रभावित करेंगे। अगर चिली में अमेरिकापरस्त धुर दक्षिणपन्थी खेमे की जगह 'नरम-वाम' (यानी संसदीय वाम या सामाजिक जनवादी) भी सत्ता में आते हैं तो इससे शक्ति-सन्तुलन में भारी बदलाव आयेगा और मोरालेस के कास्त्रो-शावेज के पाले में जा खड़ा होने की सम्भावनाओं को बल मिलेगा। पेरू में ऐसे ही बदलाव की हवा चल रही है और निकारागुआ में सैन्दिनिस्ता की वापसी की सम्भावनाएँ दिख रही हैं। इसके साथ ही मेक्सिको में भी, आगामी आसन्न चुनाव के नतीजों पर दोनों खेमों की निगाहें लगी हुई हैं। अगर किसी चुनावी गठबन्धन में शामिल होकर चियापस प्रान्त के जपाटिस्टा विद्रोहियों की सत्ता में भागीदारी बनती है तो यह लैटिन अमेरिका में अमेरिकी वर्चस्व को बहुत बड़ा धक्का होगा। इसकी सम्भावना से बिल्कुल इन्कार भी नहीं किया जा सकता। खबर है कि किसी चुनावी गठबन्धन की सम्भावना तलाशने के लिये जपाटिस्टा विद्रोहियों के नेता की भूमिगत यात्राएँ जारी हैं।

कुल मिलाकर थोड़े में यह कि अपने पिछवाड़े की इन हलचलों ने अमेरिकी साम्राज्यवादियों की पेशानी पर बल डाल दिये हैं। लैटिन अमेरिकी देशों में इन दिनों बह रही अमेरिकी साम्राज्यवाद विरोधी लहर एक परिघटना है, लेकिन यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। लैटिन अमेरिका के इतिहास में इसके सुनिश्चित कारण हैं। इन सभी देशों में साम्राज्यवादी सामरिक-आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक वर्चस्व जितना नग्न और बर्बर रहा है उतना ही उग्र उसके विरोध का इतिहास भी रहा है—चाहे उपनिवेशवाद के दौर में हो या नव-उपनिवेशवाद के दौर में। जनसंघर्षों की यही विरासत साम्राज्यवाद के इस नये दौर में भी जनता के उग्र संघर्षों के रूप में दिखायी पड़ रही है। अगर सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक शक्तियाँ संगठित होकर इन्हें नेतृत्व नहीं देंगी तो इन उग्र साम्राज्यवाद विरोधी जनसंघर्षों की कोख से कुछ शावेज या ईवो मोरालेस पैदा ही होंगे और थोड़े समय के लिये ही सही ये बुर्जुआ राष्ट्रवाद की जमीन पर खड़े होकर साम्राज्यवादी मंसूबों की राह में आकर खड़े हो जायेंगे। इतिहास की प्रगतिगामी धारा के साथ चलते हुए वे विश्व सर्वहारा के संघर्षों को तात्कालिक संवेग भी प्रदान कर रहे होंगे। जिसे लातिन अमेरिकी परिघटना कहा जा रहा है उसे इसी रूप में समझने की जरूरत है। शावेज या ईवो मोरालेस जैसों की वर्गीय सीमाएँ उन्हें साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को उसकी परिणतियों तक नहीं पहुँचा सकतीं और न ही वे विश्व स्तर पर उठ खड़ी होने वाली भावी नई समाजवादी क्रान्तियों के रास्ते से अलग किसी वैकल्पिक मार्ग का प्रवर्तन ही कर सकते हैं। ऐसा सोचना एक सामाजिक जनवादी विचारधारात्मक विभ्रम होगा।

बहरहाल, लैटिन अमेरिका में बह रही साम्राज्यवाद विरोधी लहर ने फिलहाल तो साम्राज्यवादियों को स्तब्ध कर रखा है। लैटिन अमेरिका की इस लहर और इराकी जनता के बहादुराना प्रतिरोध ने मध्य एशिया में अमेरिकी मंसूबों को जबर्दस्त झटका दिया है। ईरान के खिलाफ अमेरिका व यूरोपीय साम्राज्यवादी गीदड़ भभकी से आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। इसके साथ ही साम्राज्यवादी लुटेरों की आपसी खींचतान भी लगातार बढ़ती जा रही है, इनके आपसी अन्तरविरोध भी तीखे होते जा रहे हैं।

विश्व पूँजीवादी अर्थतंत्र का बढ़ता संकट, साम्राज्यवादी दैत्य के दुर्गों के भीतर और पिछवाड़े मची इन हलचलों ने अन्तःपुरों की बेचैनियाँ बढ़ा दी हैं। सतह पर दिखने वाले तथाकथित विजयी अभियानों के अन्दर की सच्चाई यही है। लेकिन विश्व पूँजीवादी तंत्र न तो अपनी आन्तरिक गति की कमजोरियों से अपने आप भहराकर गिर पड़ेगा और न ही इधर-उधर से उस पर पड़ रही छिटपुट चोटें ही उसे धराशायी कर पायेंगी। विश्व पूँजीवाद का मृत्युलेख तो विश्व सर्वहारा को ही लिखना है। उसे ही मानवता के भविष्य के बन्द दरवाजों को खोलना है। यह अपरिहार्य है, अवश्यम्भावी है—विश्व सर्वहारा के शिक्षकों और नेताओं ने जो भविष्यवाणियाँ की हैं, वे नजूमियों की भविष्यवाणियाँ नहीं थीं। वे मानव समाज और सभ्यता के विकास के इतिहास के गम्भीर वैज्ञानिक पर्यवेक्षण-अध्ययन पर आधारित हैं और आज का समय भी इन्हीं प्रेक्षणों-निष्कर्षों को नये धरातलों पर सत्यापित कर रहा है। लेकिन वस्तुगत रूप से जो अपरिहार्य है उसे आसन्न बनाना विश्व सर्वहारा के हिरावलों का काम है। इसलिये ऐतिहासिक रूप से अपरिहार्य निष्कर्षों की माला जपने से हमारा काम नहीं चलने वाला। हमें आज के समय की नयी चुनौतियों और साथ ही नयी सम्भावनाओं की सही पहचान करनी होगी और विश्व पूँजी के दुर्गों पर निर्णायक धावा बोलने के लिए विश्व सर्वहारा को नये सिरे से तैयार करना होगा।

यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि आज साम्राज्यवाद की जो भी शक्तिमत्ता दिखायी दे रही है वह उसकी अपनी अन्दरूनी ताकत की वजह से नहीं है बल्कि मज़दूर क्रान्ति की हिरावल ताकतों की कमजोरी के कारण है। साम्राज्यवाद की प्रकृति और अभिलाक्षणिकताओं के बारे में, और उससे भी मूल बात यह कि पूँजीवाद की प्रकृति और कार्यप्रणाली और अनिवार्य अन्तरविरोधों के बारे में मार्क्सवाद की बुनियादी प्रस्थापनाएँ आज भी सही हैं। लेकिन आज की चुनौतियों की सही पहचान करने के लिए और सही रणनीति तैयार करने के लिए साम्राज्यवाद की कार्यप्रणाली में जो बदलाव हुए हैं उनकी भी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए।

जब विश्व सर्वहारा क्रान्तियों के उभार का दौर था, तो समाजवादी राज्यों की सफलता और क्रान्तियों के भय ने दुनिया के पूँजीपतियों को कल्याणकारी राज्य का फार्मूला अपनाने के लिए और मेहनतकश जनता को बहुतेरे अधिकार देने के लिए मजबूर कर दिया था। तीसरी दुनिया के देशों के बुर्जुआ वर्ग ने भी द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, सत्ता में आने के बाद भांति-भांति की "समाजवादी" टोपियां पहनकर कल्याणकारी राज्य के इसी फार्मूले का इस्तेमाल किया और अपना उल्लू सीधा किया। अब सर्वहारा क्रान्तियों के पहले चक्र की पराजय के बाद मज़दूर वर्ग की तमाम उपलब्धियों को छीनने के साथ ही कल्याणकारी राज्यों के ढांचे को भी दुनिया में तोड़ा जा रहा है। "सबकुछ बाजार में बिकेगा, कूवत हो खरीदो, अन्यथा भूखों मरो", "बाजार में अपनी श्रमशक्ति हमारे द्वारा तय कीमतों व शर्तों पर बेचो और हमारा माल भी हमारे द्वारा ही तय कीमतों पर खरीदो"—ये ही मुक्त बाजार के सूत्रवाक्य हैं।

मुक्त बाजार की मुहिम ने पूँजीवाद के तमाम जनकल्याणकारी "संतई" के चोलों-चोंगों को उतारकर उसे अपने असली रूप में सामने ला दिया है—एकदम उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध जैसे ही बर्बर रूप में। मज़दूरों के बीच सुधारवाद की राजनीति करने वालों का सामाजिक आधार सिकुड़ता जा रहा है और उनके 'ड्रीमलैण्ड'—कल्याणकारी राज्य के यूरोपीय मॉडल (और नकली कम्युनिज्म का सोवियत मॉडल भी) मुख्यतः टूट चुके हैं और बचे-खुचे भी जल्दी ही ध्वस्त हो जायेंगे।

भारत और भारत जैसे तमाम गरीब देशों की भी आज यही स्थिति है कि कुल सर्वहारा आबादी के महज पांच फीसदी हिस्से को बड़े उद्यागों में स्थायी नौकरी की सुविधाएं हासिल हैं और उनके भी लगभग आधे हिस्से को ही सापेक्षतः कुलीन या सफेद कॉलर वाला मज़दूर कहा जा सकता है। वे ट्रेड यूनियनें और मज़दूरों के वे नेता, जिन्होंने दलिया के कटोरे और एक टिक्की मक्खन के लिए मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संघर्षों और ऐतिहासिक मिशन का सौदा कर लिया; उनका जनाधार इन्हीं कुलीन मज़दूरों के बीच है और वह भी आज छीजता-सिकुड़ता जा रहा है। दिहाड़ी और ठेके पर काम करने वाली भारी सर्वहारा आबादी उत्पादन की प्रकृति के हिसाब से संगठित सर्वहारा आबादी है, लेकिन सेवा-शर्तों के हिसाब से और राजनीतिक-आर्थिक मांगों पर संगठन बनाकर लड़ने की दृष्टि से असंगठित है। यही स्थिति कृषि-सर्वहारा की है। सर्वहारा वर्ग के इन हिस्सों में अर्थवादी-सुधारवादी मज़दूर राजनीति का सामाजिक आधार नहीं है, महज कुछ दलाल छुटभैये सक्रिय हैं। यह भी आज कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है कि सफेदपोश मज़दूरों का एक हिस्सा आज संशोधनवादियों से पीछा छुड़ाकर फासिस्टों की मज़दूर राजनीति का झण्डा थाम रहा है और क्रान्तिकारी मज़दूर राजनीति के प्रचार और आन्दोलनात्मक कामों की कमी के कारण आम मज़दूरों का एक हिस्सा भी उस ओर आकृष्ट हो रहा है।

यह तो हुआ समस्या और चुनौतियों का पहलू, सकारात्मक पहलू यह है कि जो मज़दूर राजनीति अपने को इसी पूँजीवादी व्यवस्था में बेहतर स्थिति की मांग करने तक सीमित रखती थी, उसकी कलई खुलने और सीमाएं पता चलने के बाद व्यापक मज़दूर आबादी के भीतर क्रान्तिकारी मज़दूर राजनीति को ले जाने की

(पेज 12 पर जारी)

स्मृति संकल्प यात्रा के तहत देश के विभिन्न हिस्सों में अभियान, सांस्कृतिक कार्यक्रम, नुक्कड़ सभाएँ...

पिछले वर्ष 23 मार्च को भगतसिंह और उनके साथियों के 75 शहादत वर्ष के आरम्भ पर शुरू की गई स्मृति संकल्प यात्रा के तहत देश के विभिन्न क्रान्तिकारी संगठन पिछले डेढ़ वर्षों से भगतसिंह के उस सन्देश पर अमल कर रहे हैं जो उन्होंने जेल की कालकोठरी से नौजवानों को दिया था; कि छात्रों और नौजवानों को ज़रूरत है कि वे क्रान्ति की अलख लेकर गाँव-गाँव, कारखाना-कारखाना, शहर-शहर, गन्दी झोपड़ियों तक जाना होगा। इस अभियान के दौरान इन जनसंगठनों ने जो भी जनकार्रवाइयाँ की हम उसका एक संक्षिप्त ब्यौरा यहाँ दे रहे हैं। जिन इलाकों में अभियान की टोलियों ने मुहिम चलाई उनमें उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, लखनऊ, गोरखपुर, वाराणसी, कानपुर, नोएडा, ग़ाज़ियाबाद, हापुड़; उत्तरांचल में रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर, हल्द्वानी; पंजाब में जालंधर, लुधियाना आदि जैसे शहर और साथ ही पूरा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र भी शामिल है। इनमें से कुछ स्थानों की अभियान सम्बन्धी रिपोर्टें हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। — सम्पादक

दिल्ली व आस-पास के क्षेत्रों में सघन अभियान व सांस्कृतिक कार्यक्रम

दिल्ली। शहीदेआज़म भगतसिंह के 75वें शहादत वर्ष (23 मार्च 2005) से आरम्भ हुई स्मृति-संकल्प यात्रा के तहत विभिन्न जनसंगठनों द्वारा जगह-जगह पर सांस्कृतिक कार्यक्रम किये गये, ट्रेनों, बसों, नुक्कड़ चौराहों व घर-घर में घनीभूत जनसम्पर्क अभियान चलाया गया।

इस अभियान के तहत दिशा छात्र संगठन की सांस्कृतिक टोली 'विहान' ने दिल्ली विश्वविद्यालय के परिसर में विभिन्न स्थानों पर क्रान्तिकारी गीतों के कन्सर्ट और क्रान्तिकारी नाटकों की नुक्कड़ प्रस्तुतियाँ कीं। इसी अभियान के तहत कला संकाय के ओपेन एयर थियेटर में 14 दिसम्बर को संगीत कन्सर्ट और नुक्कड़ नाटकों की प्रस्तुति की। इस कार्यक्रम को छात्रों-छात्राओं द्वारा काफी सराहा गया। कई छात्रों ने भगतसिंह के विचारों को इस रचनात्मक तरीके से जन-जन तक पहुँचाने के अभियान से जुड़ने की इच्छा भी जाहिर की। इसके बाद 'विहान' की टोली ने 13 जनवरी की रात को शिक्षा संकाय में संगीत कन्सर्ट का आयोजन किया जिसमें फ़ैज़, मुक्तिबोध, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे कवियों की कविताओं की सांगीतिक प्रस्तुति की गई और साथ ही बॉब डिलन और जॉन लेनन के गीतों की भी प्रस्तुति की गई। यहाँ भी छात्रों ने कार्यक्रम को काफी सराहा और भरपूर सहयोग किया।

नौजवान भारत सभा और दिशा छात्र संगठन ने मुकुन्द विहार में दो दिन (18-19 दिसम्बर) का निशुल्क मेडिकल कैम्प का आयोजन किया जिसमें 700 लोगों की जाँच की गई। इसी कैम्प में पोस्टर प्रदर्शनी का भी आयोजन हुआ। स्मृति संकल्प यात्रा के तहत ही आयोजित इस कार्यक्रम के दौरान नौभास के कार्यकर्ता और दिशा के वॉलण्टियर लगातार मज़दूरों को यह बताते रहे कि निशुल्क चिकित्सा का अधिकार हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे उन्हें लड़कर लेना ही होगा। सिर्फ दो दिन के मेडिकल कैम्प से स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का हल नहीं हो जाएगा बल्कि महज एक फ़ौरी राहत मिलेगी।

नौजवान भारत सभा और बच्चा पार्टी ने संयुक्त रूप से नववर्ष की पूर्वसंध्या पर एक सांस्कृतिक कार्यक्रम किया और इस कार्यक्रम को 'नया वर्ष नये सपनों और नये संकल्पों के नाम' नाम दिया। इस कार्यक्रम ने नौभास और बच्चा पार्टी ने एक-एक नाटक और कुछ क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये। इस कार्यक्रम के दौरान वक्ताओं ने स्मृति संकल्प यात्रा का सन्देश वहाँ भारी संख्या में मौजूद लोगों तक पहुँचाया। बच्चों ने अपने गीतों के जरिये बड़े-बुजुर्गों को जाति और धर्म के भेदों से ऊपर उठने की सीख दी।

स्मृति संकल्प यात्रा के दौरान दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा ने दिल्ली को केन्द्र बनाकर हापुड़, ग़ाज़ियाबाद तक ट्रेनों में अभियान चलाया और भगतसिंह के विचारों को यात्रियों तक पहुँचाया और स्मृति संकल्प यात्रा के पर्चे वितरित किये। यात्रियों को यह जानकर काफी ताज्जुब हुआ कि आज के दौर में भी ऐसे नौजवान पाये जाते हैं जो भगतसिंह के सपनों को जीवित रखे हुए हैं और शहीदे-आज़म के विचारों को दूर-दूर तक पहुँचा रहे हैं। लोगों ने अभियान टोली का दिल से उत्साह बढ़ाया और सहयोग किया। ट्रेनों के अतिरिक्त दिशा और नौभास की संयुक्त टोलियों ने दिल्ली की स्थानीय बसों में भी व्यापक अभियान चलाया। इन अभियानों को विशेष रूप से भारी सहयोग प्राप्त हुआ। बस में सफ़र करने वाले मुसाफ़िरों ने टोली की बात को ध्यान से सुना और कई नौजवानों ने इस मुहिम से तत्काल जुड़ने की इच्छा प्रकट की। कई बसों के कण्डक्टर तो अभियान टोली को पहचान चुके थे और जब भी उसे देखते थे तो अपनी बस के यात्रियों को भगतसिंह का सन्देश देने के लिए बुलाते थे। इतना ही नहीं बस में आने पर वे यात्रियों से स्वयं अपील करते थे कि वे इस अभियान में सहयोग करें।

इसके अतिरिक्त, दिशा और नौभास की टीम ने हापुड़ में जीवन बीमा, जल निगम, विद्युत विभाग और नगर निगम के दफ्तरों में अभियान चलाया और कर्मचारियों को सरकार की मज़दूर विरोधी नीतियों की असलियत बताई। दिल्ली में एमटीएनएल और एनडीपीएल के दफ्तर में भी अभियान चलाया और कर्मचारियों ने युवाओं के इस प्रयास को दिल खोलकर सराहा और मदद की। अभियान टोली ने दिल्ली के तिमारपुर, रोहिणी, मॉरिस नगर, नॉर्थ कैम्पस के स्टाफ फ्लैटों, सादतपुर, भगतसिंह कॉलोनी, प्रेमनगर, मुकुन्द विहार, प्रकाश विहार इलाकों में व्यापक और घनीभूत जनसम्पर्क अभियान चलाया। इस दौरान इन जगहों के निवासियों ने इस प्रयास को सराहनीय बताया और टोली से नियमित तौर पर आने को कहा।

ये नुक्कड़ सभाएँ, सांस्कृतिक कार्यक्रम, बस एवं ट्रेन अभियान, घर-घर जनसम्पर्क अभियान यह रपट लिखे जाने तक जारी थे।

–बिगुल संवाददाता

नाउम्मीदों की एक उम्मीद–क्रान्ति!

शहीदेआज़म भगतसिंह और उनके साथियों के अधूरे सपनों की स्मृति जगाने और उन्हें पूरा करने के लिए एक नयी जनक्रान्ति का आह्वान करते हुए स्मृति-संकल्प यात्रा के अन्तर्गत गोरखपुर, इलाहाबाद और लखनऊ में लगातार विभिन्न प्रकार की जनकार्रवाइयाँ जारी हैं। उत्तर प्रदेश के इन प्रमुख महानगरों में दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ता संयुक्त टोलियाँ बनाकर औश्र अलग-अलग जनप्रचार की विविध कार्रवाइयों के जरिये छात्रों-युवाओं और मेहनतकश आबादी के बीच यह आह्वान कर रहे हैं–**'भगतसिंह की बात सुनो, नयी क्रान्ति की राह चुनो।'**

प्रभात फेरियों, नुक्कड़ सभाओं व **नुक्कड़ नाटकों** के जरिये, घर-घर घनीभूत जनसम्पर्क अभियान चलाकर **पोस्टर प्रदर्शनियों** और **विचार गोष्ठियों** का आयोजन करके इन शहरों के विभिन्न मुहल्लों, स्कूलों-कॉलेजों-दफ्तरों में छात्रों-युवाओं और व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच स्मृति-संकल्प यात्रा का यह सन्देश पहुँचाया जा रहा है कि देशी-विदेशी पूँजी की बर्बर लूट से जनता की मुक्ति के लिए एक नयी जनक्रान्ति की तैयारी ही अब एकमात्र विकल्प है।

गोरखपुर और **इलाहाबाद** में यात्रा के अन्तर्गत यतीन्द्रनाथ दास के शहादत दिवस (13 सितम्बर) और शहीदे आज़म के जन्मदिवस (28 सितम्बर) के बीच एक पखवारे तक एक विशेष अभियान चलाया गया। महानगर गोरखपुर के सूर्यकुण्ड-सूर्यविहार, शाहपुर आवास-विकास, राप्तीनगर, हुमायूँपुर, बिलन्दपुर, कालेपुर, दाउदपुर आदि कॉलोनियों-मुहल्लों में **प्रभात फेरियाँ** निकाली गयीं व घनीभूत जनसम्पर्क कर पर्चा वितरण किया गया। गोरखपुर विश्वविद्यालय, दिग्विजय नाथ महाविद्यालय, सेण्ट एण्ड्रयूज महाविद्यालय और डीएवी महाविद्यालय के साथ ही शहर के कई इण्टर कॉलेजों में भी **नुक्कड़ सभाओं** व **पोस्टर प्रदर्शनियों** का आयोजन किया गया। भगतसिंह के विचारों पर आधारित पोस्टर प्रदर्शनी छात्रों-युवाओं की व्यापक आबादी के बीच भगतसिंह की वैचारिक विरासत को पहुँचाने में बेहद कारगर रही।

गोरखपुर विश्वविद्यालय में भगतसिंह के जन्मदिवस पर संवाद भवन में एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसका विषय था–**'भगतसिंह की वैचारिक विरासत, आज का समय और हम'** जिसकी अध्यक्षता चर्चित कथाकार मदनमोहन ने की। गोष्ठी कक्ष छात्रों से खचाखच भरा था। इसमें वक्ताओं ने जेल में लिखे गए भगतसिंह के विभिन्न लेखों, पर्चों, पत्रों और अदालतों में दिये गये बयानों के हवाले से छात्रों-युवाओं को परिचित कराया और देशी सत्ताधारियों की उस साज़िश का भण्डाफोड़ किया जिसके चलते वे भगतसिंह के विचारों को युवा पीढ़ी तक नहीं पहुँचने देना चाहते। देशी सत्ताधारी इस सच्चाई को बखूबी जानते हैं कि भगतसिंह के विचार उनकी हुकूमत के लिए भी उतने ही खतरनाक हैं जितने वे अंग्रेज़ी हुकूमत के लिए थे।

विचार गोष्ठी में वक्ताओं ने भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में देशी पूँजीवाद द्वारा साम्राज्यवाद से साँठ-गाँठ की असलियत को बेनक़ाब करते हुए आगाह किया कि छात्रों-नौजवानों को चुनावबाज मदारियों का पिछलग्गू बनने से बचना होगा और उन्हें नये सिरे से गाँव-गाँव और शहर-शहर में तथा तमाम कॉलेजों-विश्वविद्यालयों में अपने क्रान्तिकारी संगठन बनाने होंगे।

इलाहाबाद में इस विशेष पखवारे के अन्तर्गत टैगोर टाउन, तेलियर गंज, जॉर्ज टाउन, कम्पनी बाग आदि मुहल्लों में प्रभात फेरियाँ निकाली गईं व घनीभूत जनसम्पर्क कर पर्चा वितरण किया गया। इसके साथ ही नगर निगम, ए.जी. ऑफिस, हाईकोर्ट आदि दफ्तरों में नुक्कड़ नाटक व सभाओं के जरिये नये जनमुक्ति संग्राम का सन्देश पहुँचाया गया। तरुण पीढ़ी के बीच भगतसिंह के विचारों को पहुँचाने के लिए सीएवी इण्टर कॉलेज, कर्नरगंज इण्टर कॉलेज, बिशप जॉनसन इण्टर कॉलेज, बाल भारती स्कूल और बीबीएस इण्टर कॉलेज सहित कई कॉलेजों में पोस्टर व साहित्य की प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया। इन प्रदर्शनियों के जरिये तरुणों ने आश्चर्य के साथ इस सच्चाई को जाना कि 23 वर्ष की छोटी सी उम्र में फाँसी का फन्दा चूमने वाला वह जाँबाज़ नौजवान कितना ओजस्वी, प्रखर और दूरदर्शी चिन्तक था।

दिशा छात्र संगठन व नौजवान भारत सभा की संयुक्त टोलियों ने ट्रेनों और बसों में मुसाफिरों के बीच प्रचार की अनूठी कार्यवाही चलाते हुए हज़ारों की संख्या में पर्चों का वितरण किया ताकि जड़ता व गतिरोध की मौजूदा स्थिति में क्रान्ति की स्पिरिट ताज़ा की जा सके और इंसानियत की रूह में हरक़त पैदा की जा सके। गोरखपुर, वाराणसी, इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर आदि प्रमुख रेलवे स्टेशनों को केन्द्र बनाकर विभिन्न दिशाओं में जाने वाली ट्रेनों के जरिये विभिन्न दिशाओं में सुदूर अंचलों के मुसाफ़िरों के बीच स्मृति-संकल्प यात्रा का सन्देश पहुँचाये।

भगतसिंह के विचारों व सपनों के हरकारों की इन टोलियों की ऊर्जस्विता, गतिमानता और युवा-सुलभ ताज़गी और उत्साह को मुसाफिरों ने आश्चर्य-मिश्रित हर्ष के साथ स्वागत किया और भरपूर सहयोग दिया।

–बिगुल संवाददाता

भगतसिंह का ख़्वाब अधूरा, इसी सदी में होगा पूरा

नोएडा। नौजवान भारत सभा की ओर से स्मृति-संकल्प यात्रा के तहत शहीदे-आज़म भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को जन-जन तक पहुँचाने तथा एक नये जनमुक्ति संघर्ष की तैयारी के लिए सांस्कृतिक अभियानों की शुरुआत की।

इस अभियान की शुरुआत मेरठ शहर से हुई, जहाँ 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की शुरुआत हुई थी। यहाँ पर प्रेमनगर, जैननगर तथा रेलवे स्टेशन के आस-पास के इलाकों में सघन रूप में स्मृति-संकल्प यात्रा का पर्चा वितरित करने के साथ कई जनसभाएँ भी आयोजित की गईं जिसमें क्रान्तिकारी गीत भी गाए गए।

वक्ताओं ने कहा कि भगतसिंह और उनके साथी व्यापक आम मेहनतकश आबादी के लिए आज़ादी चाहते थे न कि थैलीशाहों के लिए। उन्होंने कहा कि भगतसिंह ने उसी समय जनता को आगाह करते हुए कहा था कि कांग्रेस सिर्फ पूँजीपतियों की आज़ादी चाहती है। कांग्रेस की लड़ाई का अन्त साम्राज्यवाद के साथ एक समझौते के रूप में होगा।

नोएडा, ग़ाज़ियाबाद तथा दिल्ली के तमाम कार्यालयों में भी नौभास के कार्यकर्ताओं ने अभियान चलाया। नोएडा की झुग्गी बस्तियों में 'भगतसिंह की बात सुनो, नई क्रान्ति की राह चुनो!',

(पेज 12 पर जारी)

(पेज 10 से आगे)

अनुकूल स्थितियां नये सिरे से पैदा हुई हैं और मज़दूर की जिन्दगी भी आज खुले तौर पर, उसे यह समझने के लिए मजबूर कर रही है कि उसके पास "खोने के लिए सिवा अपनी जंजीरों के और कुछ भी नहीं।" क्रान्तिकारी राजनीतिक शक्तियां आगे बढ़कर पहल अपने हाथों में ले सकें और नई शुरुआत कर सकें, इसके अनुकूल स्थितियां फिर से तैयार होने लगी हैं।

आज के वस्तुगत हालात की इन नयी चुनौतियों-समस्याओं-सम्भावनाओं की सही पहचान के साथ ही हमें विश्व सर्वहारा क्रान्ति के पहले चक्र के ऐतिहासिक अनुभवों और उनसे निकले जरूरी सबकों को अच्छी तरह आत्मसात करके मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी विचारधारा की पुख्ता जमीन पर खड़े होना होगा। केवल, तभी हम इन नयी सम्भावनाओं को ठोस क्रान्तिकारी उपलब्धियों में बदल सकते हैं। प्रथम सर्वहारा क्रान्तियों और समाजवादी प्रयोगों ने गुजरी सदी में यह साबित कर दिखाया है कि मज़दूर राज्य और समाजवाद सम्भव है और व्यावहारिक भी। वह स्थायी नहीं हो सका, क्योंकि पूँजीवाद और वर्ग समाज की शक्तियाँ अभी भी मजबूत थीं और प्रारम्भिक प्रयोगों में भी कुछ कच्चापन और अधूरापन था। समाजवादी संक्रमण की समस्याओं और पूँजीवादी पुनर्स्थापना के खतरों की जमीन को आम तौर पर समझने की जो दृष्टि चीन में हुए सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के प्रयोग ने दी है उसे भुला देना सर्वहारा के हरावलों के लिए खासतौर पर घातक होगा। इसके साथ ही दृढ़ विचारधारात्मक बुनियाद पर कायम सर्वहारा वर्ग की एक एकीकृत सच्ची क्रान्तिकारी राजनीतिक पार्टी के नेतृत्व और प्राधिकार को ढीला करने की प्रवृत्ति से भी बचना होगा। आज के समय की सही पहचान कर, अपनी नयी रणनीतियाँ निर्धारित कर विश्व सर्वहारा के ऐतिहासिक संघर्षों के अनुभवों और सबकों की रोशनी में सर्वहारा के हिरावलों को अपनी कतारें नये सिरे से सजानी होंगी। हमारा यह अटल विश्वास है कि नयी सदी मेहनतकशों की सदी होगी और इस विश्वास को हम एक बार फिर दुहरा रहे हैं।

राहुल फाउण्डेशन का महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

बोल्शेविक पार्टी का इतिहास

जे.वी. स्तालिन द्वारा लिखित और सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति के एक आयोग द्वारा सम्पादित यह पुस्तक सोवियत संघ में 1938 में छपी थी। यह पुस्तक दुनियाभर के कम्युनिस्टों के लिए एक अनिवार्य पाठ्यपुस्तक रही है, और आगे भी रहेगी। यह पुस्तक कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में मज़दूर वर्ग द्वारा समाजवाद के लिए सफल संघर्ष और समाजवादी निर्माण के अनुभवों और सबकों का निचोड़ प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक हमें सामाजिक विकास के नियमों के ज्ञान से लैस करती है तथा पूँजी और श्रम के बीच जारी विश्व ऐतिहासिक महासमर में समाजवाद की अपरिहार्य विजय में विश्वास पैदा करती है। पृ. 360 मूल्य : 80 रुपये

प्रतियों के लिए जनचेतना के केन्द्रों से संपर्क करें (पते के लिए देखें पृष्ठ 8)

मजदूरों के लिए असली जनरल नालेज

चुनाव क्या है?

– जनता की गाढ़ी कमाई के करोड़ों रुपये खर्च करके जनता के ही साथ धोखाधड़ी!

चुनावी नेता क्या हैं?

– पूंजीपतियों के कुत्ते, साम्राज्यवादियों के टट्टू!

आज चुनावी पार्टियों के सफल नेता कौन हो सकते हैं?

– चोर, पाकेटमार, ठग, बटमार, तस्कर, दंगाई, गुण्डे, वेश्यागामी, लोफर-आवारे, दलाल, ठेकेदार, सिनेमा के भांड, खूनी, माफिया सरगना और धर्म के व्यापारी!

संसद क्या है?

– सुअरबाड़ा! गुण्डों-डकैतों -वेश्यागामियों-भ्रष्टाचारियों का अड्डा। यही आज के पूंजीपतियों के राजनीतिक प्रतिनिधि हैं!

वोट कैसे पड़ते हैं?

– जाति-धरम पर जनता को बांटकर, दंगे भड़काकर, नोटों से खरीदकर, बंदूकों से डराकर, गरीबों को लालच देकर!

संसद-विधानसभाओं में क्या होता है?

– कुछ दिखावटी बहसें, मारपीट, जूतम-पैजार, और असली काम होता है जनता को लूटने-कुचलने के कानून बनाने का।

सरकार क्या करती है?

– देशी-विदेशी पूंजीपतियों की सेवा, उनकी लूट को बढ़ाना और व्यवस्थित करना, जनता को कुचलना, धोखा देना।

भारतीय जनतंत्र क्या है?

– पूंजीपतियों की तानाशाही!

तथाकथित जनतांत्रिक संस्थाएं और न्यायपालिका क्या हैं?

– पूंजीवादी शासन के दिखाने के दांत!

और खाने के दांत?

– फौज, पुलिस, जेल, नौकरशाही!

न्यायपालिका क्या करती है?

– थैलीशाहों के हित में न्याय का व्यापार!

पूंजीवादी न्याय की नजर में गरीब होना ही एक अपराध है! शोषण पूंजीपतियों का जन्मसिद्ध अधिकार है! जुल्म को चुपचाप सहना शरीफ नागरिक का गुण है। जुल्म का विरोध सबसे संगीन जुर्म है!

इस पूरे ढांचे का विकल्प क्या है?

– जुल्म के खिलाफ मेहनतकशों और आम लोगों की एकता! इंकलाबी संगठनों का निर्माण!
मौजूदा निजाम के खिलापफ आम बगावत! पूंजीवाद का नाश!
समाजवाद के उसूलों पर, न्याय और समता पर आधारित एक नये भारत का निर्माण!

कानून और सरकार

(पेज 13 से आगे)

स्वतः विवाद का कारण बना हुआ है।

समस्त सम्पत्ति सम्बन्धी कानूनों के बड़े-बड़े मोटे पोथे जिनसे जजों की मेज शोभा पाती हैं, जिन्हें डॉक्टर ऑफ लॉ, कौंसिल, बैरिस्टर, वकील लोग लिये फिरते हैं; कुछ अर्थ नहीं रखते, सिवा इसके कि मानव जाति के श्रम के फल को छीन कर थोड़े से ठेकेदारों के हाथ में सौंप दें। इन कानूनों, वकीलों और जजों की तनिक भी आवश्यकता हमें नहीं है। इनके अन्त होने से ही मनुष्य जाति को सुख हो सकता है। जिस दिन मनुष्य जाति कानून और उनके भाष्यों को एकदम त्याग कर देगी उसके सुख का द्वार खुल जायेगा, संसार में शान्ति फैलेगी और प्राकृतिक नियम एक सिरे से दूसरे सिरे तक अपना काम करने लगेंगे। जनता के लिए कानूनों का सदुपयोग यही है कि वह इन्हें प्रशान्त महासागर के पेट में सदा के लिये शान्तिपूर्वक बैठने का सौभाग्य प्रदान करे।

दूसरे प्रकार के कानून जो स्वयं सरकार की रक्षा के लिये हैं, उनकी विचित्रता का तो कुछ कहना ही नहीं। सरकार कानून की रक्षा करती है और कानून सरकार की रक्षा करते हैं। पुलिस किसी को कितना भी और किसी तरह सतावे, उसे और उसकी निर्मात्री तथा भत्री सरकार को नेकनीयत कहकर छोड़ दिया जाता है।

लाखों में एक बार कभी किसी सरकारी नौकर को दण्ड होता होगा, सो भी उसके व्यक्तिगत अपराध के लिये। किन्तु पुलिस के विरुद्ध किसी ने मुँह खोला कि कानून का सारा संग्रहालय और राज्य का सारा कोष इस बिचारे फरियादी को पीसने के लिये फौरन खोल दिया जाता है। सरकारी नौकर को, वह चाहे जज हो, सेना या पुलिस का अफसर हो, या और कोई कर्मचारी हो, उसके दोषी या निर्दोषी होने का विचार किये बिना ही, उसे बचाने की कोशिश करना कानून और सरकार का धर्म होता है। यही सरकार की रक्षा है। अगर कानून और सरकार की रक्षा के ढोंग के विषय में बाल की खाल निकाली जाये तो एक पोथा सहज ही में तैयार हो सकता है। दूसरों के रक्षण और भक्षण के लिये तो कानून की जरूरत पड़ती है किन्तु सरकार के संरक्षण और सरकार के विरुद्ध मुँह खोलने वालों के लिए किसी भी कानून और न्यायालय की जरूरत नहीं होती, सरकार के पास सर से पैर तक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित भाड़े के अत्याचारी और घातक हरदम तैयार रहते हैं, इनको इशारा किया गया कि आदमी तुरन्त पकड़कर स्वर्ग भेज दिया जाता है या जेल में अस्थिपंजर बनाया जाता है, या देश बाहर निकाला जाता है, या नजरबन्द के नाम से किसी कोने में सड़ाया जाता है। इस तरह सरकार, कानून, सरकारी प्रतिष्ठा और कानूनों की महत्ता की रक्षा का दृश्य हम भू-मण्डल के समस्त राष्ट्रों में देख रहे हैं। इतिहास में भी इसका हाल पढ़ सकते हैं और कानूनी किताबों की व्याख्याओं और मन्तव्यों में भी पा सकते हैं।

स्मृति संकल्प यात्रा के तहत देश के विभिन्न हिस्सों में अभियान

(पेज 11 से आगे)

'भगतसिंह का ख़्वाब अधूरा, इसी सदी में होगा पूरा!' आदि नारे लगाते हुए जब नौजवानों की टीम ने प्रवेश किया तो मज़दूरों का उत्साह देखने लायक था। मज़दूरों ने क्रान्तिकारियों का साहित्य छापने के लिए न सिर्फ आर्थिक सहयोग किया बल्कि उनके बीच युवा टोली को अपने-अपने घर ले जाकर भोजन-पानी कराने के लिए होड़-सी मच गई। नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने घर-घर जाकर मज़दूरों को हर तरह के ज़ोरो-जुल्म और पूँजीवादी शोषण के ख़िलाफ़ उठ खड़ा होने का आह्वान किया।

नोएडा तथा ग़ाज़ियाबाद के विभिन्न कॉलेजों में छात्रों के बीच भगतसिंह का साहित्य वितरित किया गया। संगठन के कार्यकर्ताओं ने छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा कि भगतसिंह ने छात्रों को सामाजिक बदलाव के लिए हमेशा मुख्य शक्ति माना था। उन्होंने छात्रों से कहा था कि 'विद्यार्थियों को क्रान्ति का सन्देश लेकर खेतों-खलिहानों तथा झुग्गी-बस्तियों में जाना होगा।'

छात्रों के बीच क्रान्तिकारी गीतों को काफी सराहा गया। युवा टोल की ओर से भगतसिंह के सपनों का साकार करने तथा एक नये क्रान्तिकारी बदलाव के लिए छात्रों को आगे आने का आह्वान किया गया।

विभिन्न दफ्तरों में पर्चा वितरित करने के साथ ही स्मृति-संकल्प यात्रा के कार्यकर्ताओं ने कर्मचारियों को बताया कि भगतसिंह मेहनतकशों की आज़ादी चाहते थे इसलिए उन्होंने ट्रेड डिस्प्यूट बिल का विरोध करते हुए असेम्बली में बम फेंका था। भगतसिंह और उनके साथियों ने साफ़ तौर पर कहा था कि वे 90 प्रतिशत मेहनतकशों की आज़ादी चाहते हैं।

कार्यकर्ताओं ने कर्मचारियों को आगाह करते हुए कहा कि नयी आर्थिक नीति लागू होने के बाद से हमारा देश देशी-विदेशी पूँजीपतियों के लिए खुला चारागाह बन गया है। श्रम कानूनों में सुधार के नाम पर जिन अधिकारों को कर्मचारियों-मज़दूरों ने लड़कर हासिल किया था उन्हें एक-एक करके छीना जा रहा है। लाल झण्डे वाली तमाम चुनावबाज़ पार्टियाँ भी अब खुले रूप में मज़दूरों के ख़िलाफ़ खड़ी हो गई हैं। इसलिए अब एक नये जनमुक्ति संघर्ष के अलावा मेहनतकश आबादी के पास दूसरा कोई विकल्प नहीं है।

– बिगुल संवाददाता

कानून और सरकार

राधामोहन गोकुलजी

राधामोहन गोकुलजी भारतीय राष्ट्रीय जागरण के एक अग्रणी स्तम्भ थे। रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और अज्ञानता की मानसिक दासता में भारतीयों की जकड़न को गोकुलजी औपनिवेशिक गुलामी का एक प्रमुख कारण मानते थे। इसलिए उन्होंने मुख्यतः लेखन कर्म और पत्रकारिता को हथियार बनाकर राष्ट्रीय जागरण और प्रबोधन के मोर्चे पर डटने का निर्णय लिया। लेकिन वे मात्र अध्ययन कक्षों के व्यक्ति नहीं थे। लेखन-सम्पादन के साथ ही उनकी राजनीतिक सक्रियता भी आजीवन बनी रही। कांग्रेसी राजनीति के सीमान्तों का अतिक्रमण करते हुए वे सशस्त्र क्रान्ति के उत्कट प्रचारक और पक्षधर बने और फिर 1920 के दशक में कम्युनिज्म के प्रचार और कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण में अहम भूमिका निभायी। अपनी विचारधारा में गोकुलजी ने हिन्दू धर्म की रूढ़ियों का विरोध करते हुए पहले आर्य-समाज तक की यात्रा की। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक वे कट्टर निरीश्वरवादी, जुझारू भौतिकवादी और उत्कट जनवादी बन चुके थे। और फिर तीसरे दशक के प्रारम्भ तक वे कम्युनिज्म के उसूलों के क़ायल होकर उनके धुआँधार प्रचार में लग चुके थे।

राधामोहन गोकुलजी ऐसे विचारक थे जिन्होंने भारतीय चिन्तन-परम्परा की प्रतिगामी धारा को खारिज करते हुए उसकी प्रगतिशील धारा की विरासत को आत्मसात किया तथा साथ ही, पाश्चात्य चिन्तन के क्रान्तिकारी, जनवादी, वैज्ञानिक और प्रगतिशील मूल्यों को भी आत्मसात करने पर पुरजोर ढंग से बल दिया। औपनिवेशिक शासन के उग्र प्रतिरोध के साथ ही उन्होंने तमाम पुरातनपंथी, धार्मिक रूढ़ियों-परम्पराओं-अंधविश्वासों पर निर्भीक और मारक चोट की। उनके समय में ऐसा साहस अन्यत्र नहीं दीखता। यूरोपीय पुनर्जागरण के महानायकों की तरह, वृद्धावस्था तक गोकुलजी अपने विचारों के लिए हर क़ीमत चुकाने को उद्यत रहे। कई-कई बार उन्होंने जेल-यात्राएँ की, यंत्रणाएँ भोगीं और निजी स्तर पर भी अनेकशः त्रासदियाँ झेली, लेकिन उनकी प्रतिबद्धता और सक्रियता अटल बनी रही। सितम्बर, 1935 में बुंदेलखण्ड के सुदूर खोही अंचल के गाँवों में क्रान्तिकारी जनजागरण का काम करते हुए ही उन्होंने आखिरी साँस ली।

राधामोहन गोकुलजी ने निरीश्वरवाद और कम्युनिज्म के प्रचार, अन्धविश्वास और जाति-पाँत के विरोध, स्त्रियों की पराधीनता, आर्थिक वैषम्य, औपनिवेशिक शोषण से लेकर विश्व क्रान्तियों और समकालीन समस्याओं तक—सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-ऐतिहासिक-दार्शनिक प्रश्नों पर विपुल लेखन किया। उनकी रचनाओं की बेकली, उनका विद्रोही आह्वान, उनके अकाट्य तर्क आज भी पाठकों में उत्तेजना और बेचैनी पैदा कर देते हैं। गोकुलजी राष्ट्रीय जागरण के दौर में प्रबोधन की धारा के अग्रधावक थे। उनकी रचनाओं में दिदेरो और वाल्तेयर जैसे प्रबोधनकारी फ्रांसीसी दार्शनिकों तथा चेर्नीशेव्स्की और बेलिंस्की जैसे रूसी क्रान्तिकारी जनवादी विचारकों जैसी आग दिखाई देती है। इस मायने में वह उस अग्निधर्मी परम्परा के प्रवर्तक थे, जिसे उनके बाद राहुल सांकृत्यायन ने आगे बढ़ाया।

गोकुलजी के दयानन्द सरस्वती, लाला लाजपत राय, मदन मोहन मालवीय और महात्मा गाँधी से लेकर रासबिहारी बोस, शचीन्द्रनाथ सान्याल, चन्द्रशेखर आज़ाद और भगतसिंह तक से निकट सम्पर्क रहे थे। भगतसिंह और शिव वर्मा आदि को वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों तक पहुँचाने में उनकी अहम भूमिका रही थी। साहित्य और पत्रकारिता की दुनिया में प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट से लेकर श्यामसुन्दर दास, गणेशशंकर विद्यार्थी, महादेव प्रसाद सेठ, मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव, शिवपूजन सहाय, किशोरी दास वाजपेयी, निराला, प्रेमचन्द आदि से न सिर्फ उनका सम्पर्क-सान्निध्य रहा, बल्कि उनके कई कनिष्ठ समकालीन उन्हें अपना प्रेरणा-पुरुष मानते थे। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण विडम्बना है कि आम लोग ते दूर क्रान्तिकारी परिवर्तन के सांस्कृतिक और राजनीतिक मोर्चे पर सक्रिय आज की युवा पीढ़ी भी अपने ऐसे महान पूर्वज के व्यक्तित्व और कृतित्व से लगभग अपरिचित है। परिवर्तन के नये मार्ग के अन्वेषियों-निर्माताओं के लिए यह परमावश्यक है कि वे अतीत के प्रगतिशील और जनपक्षधर चिन्तन और सामाजिक प्रयोगों तथा उनके प्रवर्तक इतिहास-पुरुषों की परम्परा से परिचित हों। इतिहास की उपेक्षा करके इतिहास-निर्माण का काम नहीं किया जा सकता।

यहाँ हम राधामोहन गोकुलजी के एक विचारोत्तेजक लेख 'कानून और सरकार' के कुछ अंश प्रकाशित कर रहे हैं।—सं.

(लेख के अंश)

... ...

जो लोग कानून और सरकार का समर्थन करते हैं, मानो इस बात की घोषणा करते हैं कि हम नालायक पशु हैं, और हम अवश्य ही बदमाशी-अमानुषी कृत्य करेंगे। इसलिए दो-चार आदमियों का डण्डा लेकर अपने सिर पर खड़ा कर देना जरूरी है कि जब हम बदमाशी करें तो वे हमारी पीठ पर तड़ातड़ लगाना आरम्भ कर दें। फिर इन डण्डा लगाने वालों को, यदि कभी उनकी इच्छा हो आये, तो इस बात का भी अधिकार हो जाता है कि अपनी मरजी से मनमाने डण्डे लगायें और नाच नचायें। इस विचार के लोगों को समझ में नहीं आता कि किस श्रेणी में रखा जाय। पशु-पक्षी भी नहीं चाहते कि वे अपने ऊपर हाकिम या जज या पुलिस या जेलर तैनात करें। जंगली मनुष्य जातियाँ भी उस तरह के काम की विरोधिनी नजर आती हैं। हमारा तो ख्याल है कि सिवा इन विचित्र जन्तुओं के दूसरा कोई भी प्राणी सरकार और कानून का स्वागत करने को तैयार न होगा। ऐसे ही नादान लोगों की भूल से जब एक बार अधिकारियों की सृष्टि हो जाती है तो फिर सदा के लिए सरकार और कानून हमारे ऊपर अत्याचार करने का हक कायम कर लेते हैं। संसार के अनेक राजधरानों की सृष्टि इसी प्रकार हुई है। राजपूताने का एक बड़ा भारी भूभाग जाटों का था। यह गोदारे जाट कहलाते थे। इन्होंने एक बार अपनी इच्छा से श्री बीकोजी को अपना राजा मान लिया तो आज तक बीकानेर का राज्य स्थापित है और जाटों के अधिकार का कहीं नाम निशान भी नहीं हैं। (देखो जेम्स टाड, राजस्थान)।

पूँजी के जन्म का इतिहास हम देखते हैं तो जान पड़ता है कि यह भी युद्ध, लूट और दासता से ही पैदा हुई है। छल, दगा और लूट खसोट ही पूँजी की जननी है। पूँजी ने कैसे श्रमियों के रक्त से अपना भरण-पोषण किया कैसे धीरे-धीरे सारी दुनिया को जीत लिया इसके लिए साम्यवादियों का लिखा पूँजी के जन्म का इतिहास पढ़ना चाहिए। इसी प्रकार हमें कानून के जन्म का इतिहास भी जानने की जरूरत है।

लूट, खसोट, छीन-झपट, दासता के फल की रक्षा का बीड़ा उठाने के गुण में कानून भी पूँजी का ही सगा भाई प्रतीत होता है। यह दोनों पारस्परिक सहायता से ही बढ़े और समुन्नत हुए। कानूनों का समर्थन पूँजी करती है और पूँजी (धन) की रक्षा कानून करता है। ऊँटों के विवाह में गधे गान करने गये और परस्पर एक दूसरे की सराहना करने लगे। गधों ने कहा वाह, आपका कैसा सुन्दर रूप है। ऊँटों ने उत्तर दिया, धन्य धन्य आपकी कैसी सुरीली आवाज है। बलवान और धनवान मिलकर जनता का सर्वस्व अपहरण करते हैं। यह सच है कि कभी-कभी बलवानों का संघर्ष भी होता है; कभी-कभी जनता अपने बल को पहचान लेती है तो वह इनकी मिली भगत में बाधा डालती है। पर अभी तक धन और कानून का ही हाथ ऊपर रहा है।

जनता को निद्रित रखने के लिए, उसे सदा के लिए अचेत बनाये रखने को धन और बल ने मिलकर पुरोहिती (मजहब) का एक फन्दा तैयार किया। तब धर्मशास्त्रों के नाम से पहिले पहल कानून बने। इन कानूनों के बनाने और व्यवहार में लाने वाले पुरोहितगण हुए। इन्होंने हमको अदृश्य स्वर्ग का प्रलोभन देकर, ऐहिक सुख की सामग्री के प्रति घृणा उत्पन्न कराई और अपना और अपने सहायक धनवानों तथा बलवानों का काम बनाया। संसार के सारे धर्मों का इतिहास आद्योपान्त हमें इसी षड़यंत्र की सूचना दे रहा है।

इस तरह लट्ठ और छल के द्वारा बनाये हुए कानूनों का प्रभुत्व धीरे-धीरे बढ़ा। इनके अधिकार का वृत्त और बल खूब बढ़ गया, तब इन्होंने कर वसूल करने में कड़ाई की, लोगों को दण्ड देने का विधान किया और लट्ठ के बल अपना मतलब सिद्ध करने लगे। आज इन्हीं अत्याचारपूर्ण कानूनों का संग्रह धर्मशास्त्र के नाम से या राजदण्ड के नाम से हम अपने ऊपर चक्र की तरह सिर काटने को मँडराता देख रहे हैं। इस दुधारी तलवार (मजहबी कायदे और राजकीय कानून) से काला बचता है न कबरा। लोहार, चमार, जुलाहे, धुनिया, किसान, कारीगर आदि सभी श्रमजीवी इस कानून रूपी कोल्हू में रात दिन पिसते चले जाते हैं। एक ओर स्वर्ग की चाह में लोग अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट काटते हैं; और मक्के, मदीने, बद्रीनाथ, जगन्नाथ की यात्रा, साधु, पण्डे, पुरोहित, मुल्ला, मौलवी, फकीर, दरवेश आदि की आवश्यकताओं की पूर्त्ति में, पण्डे पुजारियों के पेट भरने में, मन्दिर और मसजिद के बनाने और उनकी रक्षा में सारा संचित धन लुटा देते हैं। किसान भूखा मरता है, पर अपनी आय का तीन चौथाई से अधिक राजा, जमींदार और साहूकार को चुपचाप सौंप देता है, क्योंकि यह कानून की आज्ञा है। बेचारा न दे तो जिन्दा नहीं रह सकता। एक तरफ कैद, कुर्की, नीलाम का डर है और दूसरी तरफ बदनामी और नरक आदि का भय मारे डालता है। इन चक्की के दो पाटों के बीच में धन को, असल में, कमाने वाली प्रजा रात दिन पिसी चली जाती है, पर उफ नहीं कर सकती। इन्हीं कानूनों की प्रतिष्ठा करना रात दिन हमें सिखलाया जाता है। कानून, शान्ति और नियम के नाम पर, जनता की रक्षा के बहाने से मानव जाति का रात दिन रक्तशोषण करता है। कर, जुर्माना, दक्षिणा का त्रिशूल हमें रात दिन छेदता ही रहता है। हरामखोर गंजेड़ी इस बात को साफ कर देते हैं—'आ तो दमादम, कमावें निपट उल्लू, खांय हम।'

अधिकांश राजकीय कानून तो सम्पत्ति की रक्षा के लिए ही होते हैं। धनवानों की मोटरों की 'भों भों' सुन कर निर्धन पैदल चलने वाले पशुओं की तरह इधर-उधर भाग कर जान बचाते हैं। जो कुचले जाते हैं उनके बदले भी मोटर हाँकने वाला गरीब ही दण्ड पाता है। मानों धनवानों के सिवा गरीबों के लिए सड़क हैं ही नहीं। इसी तरह मन्दिरों, मसजिदों, गिरजों में भी अमीरों का खास ख्याल रखा जाता है। क्योंकि स्वर्ग की कुंजी अर्थात् धन जिनके पास नहीं है, वह स्वर्ग के अधिकारी कैसे हो सकते हैं। यह है कानून और यह लीला है धर्मशास्त्र और दण्ड-संग्रह की।

अब हम कानूनों की आलोचना जरा अधिक गंभीरता से करना चाहते हैं। वाचक वृन्द! लक्ष-लक्ष कानून जो मनुष्य को नियम पूर्वक चलाने के लिए मौजूद हैं, इनको गहरी दृष्टि से वर्गीकरण पूर्वक देखें तो वे तीन प्रकार के पाये जायेंगे—1. सम्पत्ति की रक्षा के लिए 2. सरकार की रक्षा के लिए 3. व्यक्तियों की रक्षा के लिए।

विचार कर देखते हैं तो तीनों ही निस्सार और जनता को पीड़ा पहुँचाने वाले यंत्र मात्र हैं। फिर भी हम इन पर जरा गहरी नजर डालते हैं।

साम्पत्तिक रक्षा सम्बन्धी कानून का अर्थ यह है कि कोई व्यक्ति या समष्टि अपने श्रम का धन आप न खा सके। किसान, मज़दूर और कारीगर जो उत्पन्न करें उसको लूटकर दूसरे लोगों को, जो निकम्मे, निठल्ले और हरामखोर हैं, पहुँचाया जाय। अगर लाला करोड़ीमल कानून की रू से किसी हवेली के मालिक हैं, तो इसका मतलब यह नहीं है कि उस मकान को लाला करोड़ीमल ने स्वयं अथवा अपने इष्ट मित्रों वा घर वालों की सहायता से बना कर तैयार किया है, जैसे कि जंगलों में ग्रामीण लोग अपने झोंपड़े तैयार करते हैं। लाला करोड़ीमल तो दूसरों से मकान बनवाते हैं और उनको उनके काम के पूरे दाम तक नहीं देते। इसके मूल्य तो सामाजिक हैं क्योंकि अकेले तो वे इसे बना नहीं सकते थे। इस तरह अनेकों के श्रम के फल को एक की वैयक्तिक सम्पत्ति बना देना भूल है। वह वस्तु जिसे समाज ने मिलकर बनाई या पैदा की वह तो समाज की सम्पत्ति हुई। इसी प्रकार सारे ही नगर, पुर, ग्राम, विद्यालय, प्रयोगशालाएँ, रेल-तार, सड़क जो भी हम देखते हैं सबको गरीब मनुष्यों ने मिलकर बनाया है, तब वह एक की सम्पत्ति कैसे हो सकती है। इसलिए किसी मकान का स्वामी लाला करोड़ीमल को मानना अन्याय है। परन्तु कानून एक सार्वजनिक चीज का स्वामित्व एक को सौंप देता है। यही ढेरों कानूनी पुस्तकों का सारांश है। इसी कानून की रक्षा के लिये पुलिस, फौज, जज, मजिस्ट्रेट और अमलों के झुण्ड हमारी आँखों के सामने फिरते हैं।

सारे संसार के कानूनों में आधे से अधिक दीवानी कानून हैं जिनका काम है कि जनता की सम्पत्ति छीन कर कुछ खास व्यक्तियों के हवाले कर दें। बहुत से फौजदारी कानून भी इसी अत्याचार की सहायता को बनाये गये हैं। मालिक और नौकर का भेद बना कर थोड़े से आदमियों के लिये मानव समाज को लूटा जाता है। जो मकान बनाते हैं उनको ऋतु की क्रूरता से रक्षा पाने के लिए चार इंच भी जगह नहीं मिलती और थोड़े से लोग कानून की हिमायत से बड़े-बड़े महलों में रहते हैं।

अपने हाथ से श्रम करके माल पैदा करने वालों और चीजों के बनाने वालों के स्वत्वों की रक्षा के लिए कोई भी कानून नजर नहीं आते। अगर कानूनों और सरकारों ने जरा भी ईमानदारी और इन्साफ से काम लिया होता तो आज भू-मण्डल पर तीन चौथाई से कहीं अधिक मानव जाति इस कष्ट में न होती जिसमें कि वह आज है। कानून और सरकार ने जो भी किया सब उल्टा ही काम किया। हम देख रहे हैं कि जबरदस्त लोग हाथ में तलवार लेकर खुले खजाने निर्बल, शान्तिप्रिय श्रमजीविकों को लूट रहे हैं। कभी कोई श्रमिक दूसरे के श्रम के फल को छीनने के लिए जान-बूझकर झगड़ने नहीं जाता। जो कभी भ्रमवश कोई विवाद भी हुआ तो वहाँ ही तीसरा आदमी तय कर देता है। कानून की जरूरत पड़ती है न सरकार की आवश्यकता। इन श्रमिकों की कमाई को सम्पत्तिधारी लोग लूटते हैं और उनकी कमाई का सब से बड़ा भाग इन्हीं की जेब में जाता है। आजकल कानून विवाद को निपटाने के बदले

(पेज 12 पर जारी)

'हम भ्रम की चादर फैलाते हैं...'

हावर्ड फ़ास्ट

हावर्ड फास्ट के प्रसिद्ध उपन्यास 'आदिविद्रोही' का एक अंश 'बिगुल' के पाठकों के लिये प्रस्तुत है। उपन्यास के इस प्रसंग में सिसेरो और ग्रैकस नामक दो रोमनों की बातचीत है। ये दोनों गुलामों पर टिके रोमन साम्राज्य की सत्ता के दो स्तम्भ थे। सिसेरो दास व्यवस्था का समर्थन करने वाला विचारक और प्रखर वक्ता था और ग्रैकस एक घाघ राजनीतिज्ञ। यहाँ ग्रैकस शासक वर्गों के राजनेताओं की बेहयाई भरी स्पष्टवादिता के साथ बताता है कि लूट, शोषण और दासता पर आधारित समाज व्यवस्था के चलते रहने के लिये उस जैसे फरेबी राजनीतिज्ञों की भूमिका कितनी जरूरी होती है। शासक वर्गों के राजनीतिज्ञों की जो भूमिका हजारों साल पहले दास समाज में थी, आज के पूँजीवादी समाज में भी वही है—यानी, आम जनता को भरमाए रखना ताकि वह अन्याय और अत्याचार के खिलाफ न उठ खड़ी हो और अपने ही शोषकों का काम आसान करती रहे। – सम्पादक

"...सिसेरो मुस्कराया और बोला—तुम राजनीतिज्ञ हो इसलिये मुझे बतलाओ न कि राजनीतिज्ञ क्या होता है?

—चालबाज, ग्रैकस ने संक्षेप में उत्तर दिया।

—तुम और कुछ हो न हो, स्पष्टवादी जरूर हो।

—मुझमें यही एक गुण है और यह एक बहुत मूल्यवान गुण है। राजनीतिज्ञ के अन्दर इस चीज़ को देखकर लोग अक्सर इसको ईमानदारी समझने की भूल किया करते हैं। देखो हम लोग एक गणतंत्र में रहते हैं। इसका मतलब है कि बहुत से लोग ऐसे हैं जिनके पास कुछ भी नहीं है और मुट्ठीभर लोग ऐसे हैं जिनके पास बहुत कुछ है। और जिनके पास बहुत कुछ है उनकी रक्षा, उनका बचाव उन्हीं को करना है जिनके पास कुछ भी नहीं। इतना ही नहीं बल्कि वे लोग जिनके पास बहुत कुछ है उनको अपनी सम्पत्ति की रक्षा करनी होती है और इसलिये वे जिनके पास कुछ भी नहीं है, उनको तुम्हारे और मेरे और हमारे अच्छे मेजबान ऐण्टोनियस की सम्पत्ति के लिये जान देने को तैयार रहना चाहिये। इसके साथ-ही-साथ यह भी है कि हमारी तरह के लोगों के पास बहुत से गुलाम होते हैं। ये गुलाम हमको पसन्द नहीं करते। हमको इस भ्रम का शिकार न होना चाहिये कि गुलाम अपने मालिकों को पसन्द करते हैं। वे नहीं करते और इसलिये गुलाम हमारी रक्षा गुलामों से नहीं कर सकते। इसलिये बहुत से लोग जिनके पास गुलाम नहीं हैं, उनको हमारे लिये जान देने को तैयार रहना चाहिये ताकि हम अपने गुलाम रख सकें। रोम के पास ढाई लाख सैनिक हैं। इन सैनिकों को विदेशों में जाने के लिये तैयार रहना चाहिये, इसके लिये तैयार रहना चाहिये कि मार्च करते-करते उनके पैर घिस जायें, कि वे गन्दगी में और गुलाज़त में रहें, कि वे खून में लोट लगायें—ताकि हम सुरक्षित रहें और आराम से ज़िन्दगी बितायें और अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति को बढ़ायें। जब ये सैनिक स्पार्टकस से लड़ने के लिये गये तो इनके पास ऐसी कोई चीज़ न थी जिसकी कि वे रक्षा करते जैसी कि गुलामों के पास थी। आखिर क्या चीज उनके पास थी जिसकी रक्षा करने के लिये वे स्पार्टकस से लड़ने गये थे? मगर तब भी गुलामों से लड़ते हुए वे हजारों की संख्या में मारे गये। हम इसके आगे भी जा सकते हैं। वे किसान जो गुलामों से लड़ते हुए मारे गये, सेना में उनके होने का सबसे पहला कारण यह है कि जागीरदारों ने उनको उनके खेतों से खदेड़ दिया है। गुलामों को लेकर जो बड़ी-बड़ी जागीरें चलती थीं जिनमें बड़े पैमाने पर खेती होती थी उन्होंने उन किसानों को एकदम भिखमंगा बना दिया है, ऐसा भिखमंगा जिसके पास जमीन का एक टुकड़ा भी नहीं; और फिर मजा यह है कि इन्हीं जागीरों की हिफाज़त के लिये वे किसान जान देते हैं। इसको देखकर कहने का जी होता है कि वाह, यह तो हद हो गयी! क्योंकि मेरे प्यारे दोस्त सिसेरो, जरा सोचो कि अगर गुलाम विजयी होते हैं तो इससे हमारे बहादुर रोमन सैनिक का क्या नुकसान होता है? सच बात तो यह है कि उन गुलामों को हमारे इस रोमन सैनिक की बड़ी सख्त ज़रूरत होगी क्योंकि ज़मीन की जुताई के लिये गुलाम खुद काफी न होंगे। ज़मीन इतनी काफी होगी कि सबको पूरी पड़ जाय और तब हमारे इस रोमन सैनिक के पास वह चीज होगी जिसका सपना वह सबसे ज्यादा देखा करता है, जमीन का उसका अपना टुकड़ा और उसका निज का छोटा सा मकान। मगर तब भी वह अपने ही सपनों को नष्ट करने के लिये लड़ने को चला जाता है। किसलिए? इसीलिये कि सोलह गुलाम मेरे जैसे एक मोटे थुलथुल बुड्ढे खूसट को गद्देदार पालकी में बिठालकर ढोते फिरें! क्या तुम कह सकते हो कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ झूठ कह रहा हूँ?

—मेरा खयाल है कि जो कुछ तुम कह रहे हो अगर वह किसी साधारण आदमी ने बीच चौक में खड़े होकर कहा होता तो हमने उसे सलीब पर चढ़ा दिया होता।

—सिसेरो सिसेरा, ग्रैकस हँसा, मैं क्या इसे अपने लिये धमकी समझूँ? मैं बहुत मोटा और भारी बुड्ढा हूँ, मुझे सलीब पर चढ़ाना मुमकिन न होगा। और फिर यह तो बताओ कि सच बात को सुनकर तुम इतना घबरा क्यों जाते हो? दूसरों से झूठ बोलना ज़रूरी है मगर क्या यह भी जरूरी है कि हम खुद अपने ही झूठ पर विश्वास करें?

—यह तुम्हारा ख़याल है। मगर तुम इस बुनियादी सवाल को छोड़ जाते हो—क्या कोई आदमी किसी दूसरे आदमी जैसा ही होता है या उससे भिन्न होता है? तुम्हारी इस छोटी से वक्तृता में यही असंगति है। तुम पहले से यह मानकर चलते हो कि सब आदमी बिलकुल एक से होते हैं। मैं इस बात को नहीं मानता। मैं मानता हूँ कि श्रेष्ठ लोगों का अपना एक वर्ग होता है, ऐसे लोग जो दूसरों से ऊँचे होते हैं। बहस की चीज यह नहीं है कि उनको ईश्वर ने ऐसा बनाया या परिस्थितियों ने। मगर इतना है कि उन लोगों में शासन करने की योग्यता होती है। और चूँकि उनमें शासन करने की योग्यता होती है इसीलिए वे शासन करते हैं। और चूँकि बाकी लोग भेड़-बकरियों के समान होते हैं इसलिए उनका आचरण भी भेड़-बकरियों के समान होता है। देखो न तुम एक सूत्र पेश करते हो; असल मुश्किल तो उसकी व्याख्या करने में होती है। तुम समाज की एक तसवीर पेश करते हो, लेकिन अगर सचाई भी तुम्हारी तसवीर की ही तरह असंगत होती, तो समूचा ढाँचा एक ही दिन में भहरा पड़ा होता। तुम क्यों यह नहीं बतला पाते कि वह कौन-सी चीज़ है जो इस असंगत पहले को समेटकर रखे हुए है और गिरने नहीं देती।

ग्रैकस ने सिर हिलाया और कहा—उसको समेटकर रखनेवाला, उसको न गिरने देनेवाला मैं हूँ।

—तुम? अकेले तुम?

—सिसेरो, क्या तुम सचमुच मुझे गधा समझते हो? मैंने बहुत लम्बी और खतरों से भरी हुई जिन्दगी गुजारी है और मैं अब भी चोटी पर हूँ। तुमने थोड़ी देर पहले मुझसे पूछा था कि राजनीतिज्ञ क्या होता है? राजनीतिज्ञ ही इस उलटे-सीधे मकान को खड़ा रखने वाला सीमेण्ट है। उच्च वंशों वाले स्वयं इस काम को नहीं कर सकते। पहली बात तो यह है कि उनका सोचने का ढंग तुम्हारे जैसा है और रोम के नागरिकों को यह बात पसन्द नहीं है कि कोई उनको भेड़-बकरी कहे। भेड़-बकरी वे नहीं हैं—जैसा कि एक न एक दिन तुम्हारी समझ में आयेगा। दूसरी बात यह है कि इस उच्चवंशीय व्यक्ति को इस साधारण नागरिक के बारे में कुछ भी नहीं मालूम। अगर यह चीज़ बिलकुल उसी पर छोड़ दी जाय तो यह ढाँचा एक दिन में भहरा पड़े। इसीलिए वह मेरे जैसे लोगों के पास आता है। वह हमारे बिना जिन्दा नहीं रह सकता। जो चीज नितान्त असंगत है हम उसके अन्दर संगति पैदा करते हैं। हम लोगों को यह बात समझा देते हैं कि जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता अमीरों के लिए मरने में है। हम अमीरों को समझा देते हैं कि उन्हें अपनी दौलत का कुछ हिस्सा छोड़ देना चाहिये ताकि बाकी को वे अपने पास रख सकें। हम जादूगर हैं। हम भ्रम की चादर फैला देते हैं और वह ऐसा भ्रम होता है जिससे कोई बच नहीं सकता। हम लोगों से कहते हैं, जनता से कहते हैं—तुम्हीं शक्ति हो। तुम्हारा वोट ही रोम की शक्ति और कीर्ति का स्रोत है। सारे संसार में केवल तुम्हीं स्वतंत्र हो। तुम्हारी स्वतंत्रता से बढ़कर मूल्यवान कोई भी चीज़ नहीं है, तुम्हारी सभ्यता से अधिक प्रशंसनीय कुछ भी नहीं है। और तुम्हीं उसका नियंत्रण करते हो; तुम्हीं शक्ति हो, तुम्हीं सत्ता हो। और तब वे हमारे उम्मीदवार के लिये वोट दे देते हैं। वे हमारी हार पर आँसू बहाते हैं, और हमारी जीत पर खुशी से हँसते हैं। और अपने ऊपर गर्व अनुभव करते हैं और अपने को दूसरों से बढ़ा-चढ़ा समझते हैं क्योंकि वे गुलाम नहीं हैं। चाहे उनकी हालत कितनी ही नीचे गिरी हुई क्यों न हो, चाहे वे नालियों में ही क्यों न सोते हों, चाहे वे तलवार के खेल और घुड़दौड़ के मैदानों में सारे-सारे दिन लकड़ी की सस्ती-सस्ती सीटों पर ही क्यों न बैठे रहते हों, चाहें वे अपने बच्चों के पैदा होते ही उनका गला क्यों न घोंट देते हों, चाहे उनकी बसर खैरात पर ही क्यों न होती हो और चाहे अपनी पैदाइश से लेकर मरने तक उन्होंने एक रोज़ काम करने के लिये हाथ न उठाया हो, यह सब चाहे जो हो मगर इतना इत्मीनान क्या कम है कि वे गुलाम नहीं हैं! वे धूल हैं मगर हर बार जब वे किसी गुलाम को देखते है तो उनका अहम् जागता है और वे अपने आपको गर्व से और शक्ति से भरा हुआ महसूस करते हैं। उस वक़्त उनकी समझ में बस यही आता है कि वे रोम के नागरिक हैं और सारी दुनिया के लोग उनसे ईष्या करते हैं। और सिसेरो, यह मेरी विशेष कला है। राजनीति को कभी तुच्छ नहीं समझना।..." ◆

मुद्रा की विकृतिकारी शक्ति

(पेज 15 से आगे)

जो उन्हें उनके प्रतिलोम में बदल डालती है तथा उन्हें ऐसे गुणों से सम्पन्न करती है, जो उनके लिए विरोधाभासपूर्ण हैं।

इस *विकृतिकारी* शक्ति के रूप में मुद्रा फिर व्यक्ति के विरुद्ध तथा समाज के बन्धनों, आदि के विरुद्ध, जो आत्मनिर्भर *स्वत्व* होने का दावा करते हैं, प्रकट होती है। वह निष्ठा को अनिष्ठा, प्यार को घृणा, घृणा को प्यार, अच्छाई को बुराई, बुराई को अच्छाई, दास को स्वामी, स्वामी को दास, मूर्खता को बुद्धि, बुद्धि को मूर्खता में बदल देती है।

चूँकि मुद्रा मूल्य की अस्तित्वमान तथा क्रियाशील अवधारणा के रूप में समस्त वस्तुओं का घालमेल कर देती है और उन्हें उलझा देती है, इसलिए यह वस्तुओं का आम *घालमेल* तथा *उलझाव* है, इसलिए यह संसार को उल्टा खड़ा कर देना है, प्रकृति तथा मनुष्य के सब गुणों का घालमेल कर देना, उलझा देना है।

जो बहादुरी को खरीद सकता है, वह बहादुर है, भले ही वह कायर हो। चूँकि मुद्रा का किसी एक विशिष्ट गुण के साथ, किसी एक विशिष्ट वस्तु के साथ, मनुष्य की किसी एक विशिष्ट सारभूत शक्ति के साथ नहीं, अपितु मनुष्य तथा प्रकृति के समस्त वस्तुनिष्ठ जगत के साथ विनिमय होता है, इसलिए उसके स्वामी के दृष्टिकोण से वह प्रत्येक गुण का प्रत्येक अन्य, यहाँ तक कि विरोधपूर्ण, विशिष्टता तथा विषय के साथ विनिमय का हितसाधन करती है : वह असम्भवों की एक दूसरे से संलग्नता है। वह उन्हें आलिंगनबद्ध होने के लिए विवश करती है, जो एक दूसरे के विरोधी होते हैं।

मनुष्य को *मनुष्य* मानो और संसार के साथ उसके सम्बन्ध को मानव सम्बन्ध मानो : उस सूरत में तुम प्यार का केवल प्यार के साथ, विश्वास का केवल विश्वास के साथ विनिमय कर सकते हो, आदि। यदि तुम कला का रसास्वादन करना चाहते हो, तो तुम्हारे लिए कला की दीक्षा प्राप्त व्यक्ति होना आवश्यक है; यदि तुम दूसरों पर प्रभाव डालना चाहते हो, तो तुम्हारे लिए ऐसा व्यक्ति होना आवश्यक है, जो दूसरों पर प्रेरणादायी तथा उत्साहवर्द्धक प्रभाव डाले। मनुष्य तथा प्रकृति के साथ तुम्हारे प्रत्येक सम्बन्ध को तुम्हारी इच्छा के, तुम्हारे *वास्तविक व्यक्तिगत* जीवन के विषय के *अनुरूप विशिष्ट अभिव्यक्ति* होना चाहिए। यदि तुम बदले में प्यार उत्पन्न किये बिना प्यार करते हो, यानी तुम्हारा प्यार बदले में प्यार उत्पन्न नहीं करता, यदि प्यार करने वाले व्यक्ति के रूप में अपनी *सजीव अभिव्यक्ति* के माध्यम से तुम अपने को *प्रिय* नहीं बनाते, तो तुम्हारा प्यार शक्तिहीन है—दुर्भाग्य है।

– कार्ल मार्क्स, '1844 की आर्थिक एवं दार्शनिक पाण्डुलिपियाँ'

मुद्रा की विकृतिकारी शक्ति

कार्ल मार्क्स

यदि मनुष्य की *भावनाएँ*, उसके आवेग आदि (संकीर्ण) अर्थ में केवल नृवैज्ञानिक परिघटनाएँ नहीं हैं, बल्कि स्वत्व (प्रकृति) की सही अर्थों में *सत्तामीमांसीय* अभिपुष्टियाँ हैं और वे वस्तुतः केवल इसलिए अभिपुष्ट होते हैं कि उनका *विषय* उनके लिए *संवेदनशील* विषय है, तो यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि (1) उनकी अभिपुष्टि की कदापि मात्र एक विधि नहीं है, बल्कि, कहना चाहिए, उनके अस्तित्व, उनके जीवन की विशिष्टता उनकी अभिपुष्टि की भिन्न विधि द्वारा बनती है; विषय उनके लिए किस ढंग से विद्यमान रहता है, वह प्रत्येक विशिष्ट *आनन्द* की अभिलाक्षणिकता होता है; (2) जहाँ कहीं संवेदनशील अभिपुष्टि विषय का उसके स्वतंत्र रूप में (खाना खाने, पीने, विषय पर काम करने, आदि में) प्रत्यक्ष निराकरण होती है, वह विषय की अभिपुष्टि होती है; (3) चूँकि मनुष्य और इसलिए उसकी भावनाएँ, आदि भी मानवीय होती हैं, इसलिए दूसरे लोगों द्वारा सम्बद्ध विषय की अभिपुष्टि उसी तरह उसका अपना आनन्द होती है; (4) केवल विकसित उद्योग के ज़रिये यानी निजी सम्पत्ति के ज़रिये मनुष्य के आवेग का सत्तामीमांसीय सार अपनी सम्पूर्णता में और साथ ही अपनी मानवीयता में जन्म लेता है; मनुष्य सम्बन्धी विज्ञान इसलिए स्वयं मनुष्य के अपने व्यावहारिक कार्यकलाप की उपज है; (5) निजी सम्पत्ति—उसके अलगाव के अलावा—का अर्थ है आनन्द के विषयों के रूप में और कार्यकलाप के विषयों के रूप में मनुष्य के *सारभूत विषयों का अस्तित्व*।

मुद्रा के पास सब कुछ ख़रीदने का *गुण* है, सारे विषयों को हस्तगत करने का गुण है, इस तरह वह स्वयं सर्वोच्च अर्थ में विषय है। उसके *गुण* की सार्विकता उसके स्वत्व की सर्वशक्तिमत्ता है; इसलिए उसे सर्वशक्तिमान माना जाता है। मुद्रा मनुष्य की आवश्यकता तथा विषय के बीच, उसके जीवन तथा उसके जीवन के साधनों के बीच *कुटनी* होती है। परन्तु *वह, जो मेरे जीवन* और मेरे बीच मध्यस्थ होता है, दूसरे मनुष्यों के अस्तित्व और *मेरे* बीच भी *मध्यस्थ* होता है। यह मेरे लिए *दूसरा* व्यक्ति है।

"छिः, हाथ और पाँव, पीठ और सिर
यह सब तो निस्सन्देह तेरा अपना!
पर सुख-वृक्ष देता है तुझे जो फल
उस पर अधिकार का न देख सपना?
आधे दर्जन मतवाले घोड़े ख़रीदता मैं
पर उनकी शक्ति नहीं क्या मेरी अपनी?
शहसवार की भाँति हवा को चीरता मैं
उनके पाँवों की शक्ति ही मानो मेरी अपनी।"
गोएठे, 'फ़ाउस्ट' (मेफ़िस्टोफ़ीलीस के शब्द)

शेक्सपियर 'टिमोन आफ़ एथेन्स' में :

"सोना? पीला, चमचमाता, बहुमूल्य सोना?
नहीं, देवताओ, मैं नहीं झूठा उपासक!...
इतना-सा सोना बनाता स्याह को सफ़ेद, अनुचित को उचित,
निकृष्ट को उदात्त, वृद्ध को तरुण, कायर को नायक!
...यह
छीन लेता तुमसे तुम्हारे पुजारी और सेवक,
खींच लेता तकिये बलवानों के सिर के नीचे से :
यह पीत दास
जोड़ता-तोड़ता धर्मों को, अभिशप्तों को देता वरदान,
जीर्ण कोढ़ को बनाता उपास्य, दिलाता चोरों को सम्मान,
और पदवी, अवलम्ब, सांसदों के बीच स्थान :
यह क्रन्दन करती विधवा को फिर बना देता दुल्हन;
रिसते नासूर तथा अस्पताल भी भागें जिससे दूर,
कर देता उसे सुरभित, पुष्पित;
पीछे मुड़, अभिशप्त धरती, गणिका सारे जगत की,
कारण राष्ट्रों के युद्धों, वैमनस्य का।"

और इसके बाद :

"राजाओं का मधुर हत्यारा!
बच्चों से पिता का नाता प्यार से तोड़ता तू,
दम्पति की पवित्र शय्या का दूषणकर्ता,
शूरवीर युद्ध देवता, तू!
चिर तरुण, चिर नूतन,
प्रणय-पात्र, प्रणय-याचक सुकोमल,
डियान की गोदी का पावन हिम
तेरी लज्जारुणिमा से जाता पिघल!
तू *प्रत्यक्ष भगवान,*
असम्भव है जिन्हें करना संलग्न,
उन्हें देता तू जोड़, बाध्य कर देता
उन्हें लेने को एक दूसरे का चुम्बन!
हर उद्देश्य के लिए, हर भाषा बोलने वाला तू,
ओ हृदय को छूने वाले, ज़रा सोच यह,
दास तेरा करता विद्रोह, तेरे बूते पर
उनमें *होता* कलह, रक्तपात,
ताकि संसार पर हो जाये हैवानों का राज!"

शेक्सपियर *मुद्रा* के सार को बहुत सुन्दर ढंग से चित्रित करते हैं। उन्हें समझने के लिए पहले गोएठे की रचना के एक अंश की व्याख्या से शुरू करें।

वह, जो मेरे लिए *मुद्रा* की बदौलत विद्यमान है, वह जिसका मैं भुगतान कर सकता हूँ, यानी वह, जिसे मुद्रा ख़रीद सकती है—वह *मैं स्वयं*, मुद्रा का स्वामी हूँ। जितनी बड़ी मुद्रा की शक्ति होगी, उतनी ही बड़ी मेरी शक्ति होगी। मुद्रा के गुण मेरे—उसके स्वामी के—गुण तथा सारभूत शक्तियाँ हैं। इसलिए जो मैं हूँ तथा करने में *सक्षम* हूँ, वह मेरे व्यक्तित्व से कदापि निर्धारित नहीं होता। मैं *कुरूप* हूँ, परन्तु मैं अपने लिए *सबसे अधिक रूपवती* नारी ख़रीद सकता हूँ। इसलिए मैं *कुरूप* नहीं हूँ, क्योंकि *कुरूपता* के प्रभाव—उसकी भयभीत करने वाली शक्ति—को मुद्रा मिटा देती है। मैं अपने व्यक्तित्व के अनुसार *लँगड़ा* हूँ, परन्तु मुद्रा मुझे चौबीस पाँव दे देती है। इसलिए मैं लँगड़ा नहीं हूँ। मैं बुरा, बेईमान, लज्जाहीन, मूर्ख हूँ, परन्तु मुद्रा का सम्मान किया जाता है, इसलिए उसके स्वामी का सम्मान किया जाता है। मुद्रा सबसे नेक है, इसलिए मैं नेक हूँ। मुद्रा इसके अलावा मुझे बेईमान बनने की मुसीबत मोल लेने से बचाती है : इसलिए यह मान लिया जाता है कि मैं ईमानदार हूँ। मेरे पास दिमाग़ नहीं है, परन्तु मुद्रा समस्त वस्तुओं की *वास्तविक बुद्धि* है, तो फिर मुद्रा के स्वामी को कैसे अबुद्धि मान लिया जाये? इसके अलावा मुद्रा का स्वामी अपने लिए बुद्धिमान ख़रीद सकता है, और जिसे बुद्धिमान पर सत्ता हासिल होती है, क्या वह बुद्धिमान से अधिक बुद्धिमान नहीं है? क्या मैं, जो मुद्रा की बदौलत *वह सब* प्राप्त करने में समर्थ हूँ, जिसकी मानव-हृदय कामना कर सकता है, समस्त मानव-क्षमताओं का स्वामी नहीं हूँ? इसलिए क्या मेरी मुद्रा मेरी समस्त अक्षमताओं को उनके प्रत्यक्ष प्रतिलोमों में रूपान्तरित नहीं कर सकती?

यदि *मुद्रा* मुझे *मानव*-जीवन से तथा समाज को मुझसे, मुझे प्रकृति तथा लोगों से जोड़ने वाला बन्धन है, तो क्या वह समस्त बन्धनों का बन्धन नहीं है? क्या वह समस्त बन्धनों को तोड़ और जोड़ नहीं सकती? इसलिए क्या वह *पृथकता* का सार्विक *साधन* नहीं है? यह सिक्का ही है, जो वस्तुतः लोगों को अलग करता है, जो वस्तुतः *जोड़ने वाला साधन* है; वह समाज की *रासायनिक* शक्ति है।

शेक्सपियर मुद्रा के दो गुणों पर ख़ास तौर पर ज़ोर देते हैं :

1) यह है प्रत्यक्ष भगवान, समस्त मानव गुणों तथा प्राकृतिक गुणों का उनके प्रतिलोमों में रूपान्तरण करने, वस्तुओं का सर्वत्र घालमेल करने और उन्हें विकृत करनेवाली : जिन्हें संलग्न करना असम्भव है, उन्हें यह जोड़ देती है।

2) यह सारे जगत की गणिका, सारे लोगों तथा राष्ट्रों की कुटनी है। समस्त मानव गुणों और प्राकृतिक गुणों का विकृतीकरण और घालमेल, असम्भवों का परस्पर संलग्न होना—मुद्रा की *दिव्य शक्ति*—*मनुष्यों* के पृथक्कृत, पृथककारी तथा आत्म-पृथककारी *जातिगत सार* के रूप में मुद्रा के *सार* में निहित है। यह *मानवजाति* की पृथक्कृत *क्षमता* है।

वह, जिसे मैं *मनुष्य* के रूप में करने में असमर्थ हूँ और जिसे इसलिए मेरी सारी व्यक्तिगत सारभूत शक्तियाँ सम्पन्न करने में असमर्थ हैं, मैं *मुद्रा* की सहायता से कर सकता हूँ। मुद्रा इस तरह इन शक्तियों में से प्रत्येक को उसमें रूपान्तरित कर देती है, जो वह स्वयं में नहीं है, यानी उसे उसके *प्रतिलोम* में रूपान्तरित कर देती है।

यदि मैं किसी विशेष पकवान की कामना करता हूँ या डाकगाड़ी का इसलिए उपयोग करना चाहता हूँ कि मुझमें पैदल जाने के लिए पर्याप्त शक्ति नहीं है, तो मुद्रा मुझे वह पकवान और डाकगाड़ी उपलब्ध करा देती है, यानी वह मेरी इच्छाओं को कल्पनालोक में विद्यमान किसी वस्तु से, उनके कल्पित, इच्छित अस्तित्व से उनके *इन्द्रियग्राह्य, वास्तविक* अस्तित्व में, कल्पना से जीवन में, कल्पित स्वत्व से वास्तविक स्वत्व में बदल देती है, साकार रूप देती है। इस मध्यस्थता की सिद्धि के लिए (मुद्रा) *वास्तविक सृजनशील* शक्ति है।

माँग, निस्सन्देह, उसके लिए भी विद्यमान होती है, जिसके पास मुद्रा नहीं होती, परन्तु उसकी माँग कल्पना की वस्तु मात्र है, जिसका मेरे लिए, दूसरे के लिए, तीसरे के लिए, ख्अन्य, के लिए कोई प्रभाव या अस्तित्व नहीं है और जो इसलिए मेरे वास्ते भी *अवास्तविक तथा विषयहीन* बनी रहती है। मुद्रा पर आधारित कारगर माँग तथा मेरी आवश्यकता, मेरे संवेग, मेरी इच्छा, आदि पर आधारित अकारगर माँग के बीच अन्तर *स्वत्व* तथा *चिन्तन* के बीच, मेरे अन्दर मात्र *अस्तित्वमान* विचार तथा मुझसे बहिर्गत *वास्तविक विषय* के रूप में विद्यमान विचार के बीच अन्तर है।

यदि मेरे पास मुद्रा नहीं है, तो मेरे लिए यात्रा करने की कोई *आवश्यकता* नहीं है, यानी कोई वास्तविक, कार्यान्वयन योग्य आवश्यकता नहीं है। यदि मेरे पास अध्ययन के लिए *योग्यता* है, परन्तु उसके लिए मुद्रा नहीं है, तो मेरे पास अध्ययन के लिए कोई योग्यता, यानी कोई *कारगर*, कोई *सच्ची* योग्यता *नहीं* है। इसके उलट, यदि मेरे पास अध्ययन के लिए वस्तुतः *कोई* योग्यता *नहीं* है, परन्तु उसके लिए इच्छा *और* मुद्रा है, तो मेरे पास उसके लिए *कारगर* योग्यता है। *मुद्रा बिम्ब को यथार्थ में तथा यथार्थ को मात्र बिम्ब में* परिणत करने के लिए बाह्य, मनुष्य के रूप में मनुष्य से उद्भूत नहीं, समाज के रूप में मानव समाज से उद्भूत नहीं, अपितु सार्विक *साधन* तथा *क्षमता* के रूप में *मनुष्य तथा प्रकृति की वास्तविक सारभूत शक्तियों को* मात्र अमूर्त धारणाओं तथा इसलिए *असवांगपूर्णताओं* और यंत्रणादायी किमेरा में उसी हद तक बदल देती है, जिस हद तक वह *वास्तविक असवांगपूर्णताओं और किमेराओं को*—सारभूत शक्तियों को, जो वस्तुतः शक्तिहीन होती हैं, जो केवल व्यक्ति की कल्पना में अस्तित्वमान होती हैं—*वास्तविक सारभूत शक्तियों* तथा *क्षमता* में बदल देती है। मात्र इस अभिलाक्षणिकता के अनुसार मुद्रा इस प्रकार विशिष्टताओं की सार्विक विकृति है,

(पेज 14 पर जारी)

पूँजीवादी समाज में श्रम का अलगाव और मेहनतकशों की दशा

वह (अर्थशास्त्री) मज़दूर को संवेदनहीन और समस्त आवश्यकताओं से वंचित प्राणी में ठीक उसी तरह बदल डालता है, जिस तरह मज़दूर के कार्यकलाप को समस्त कार्यकलाप से विशुद्ध अमूर्तकरण में बदल देता है। इसलिए उसे मज़दूर का सारा *ऐशो-आराम* अस्वीकार्य है और वह सब कुछ, जो सर्वाधिक अमूर्त आवश्यकता के पार जाता है—चाहे वह निष्क्रिय आनन्द के क्षेत्र में हो अथवा कार्यकलाप की सक्रिय अभिव्यक्ति हो—उसे ऐशो-आराम प्रतीत होता है। राजनीतिक अर्थशास्त्र, *सम्पदा* का यह विज्ञान इसलिए साथ ही आत्म-त्याग का, अभाव का, *बचत* का विज्ञान भी है—और यह दरअसल इस हद तक पहुँचता है कि वह मनुष्य को ताज़ा *हवा* या शारीरिक *व्यायाम* की *आवश्यकता* में भी *बचत करना* सिखाता है। अद्भुत उद्योग का यह विज्ञान साथ ही *विरतिवाद* का भी विज्ञान है और उसका सच्चा आदर्श *विरत*, परन्तु *खसोटने वाला कंजूस* तथा *विरत*, परन्तु *उत्पादक* दास है। इस विज्ञान का नैतिक आदर्श वह *मज़दूर* है, जो अपनी उजरत का एक हिस्सा बचत-बैंक में ले जाता है और इस विज्ञान को यह प्रिय आदर्श व्यक्त करने के लिए एक दासवत *कला* भी मिल गयी है : इस भावना में रंगमंच पर भावुकतापूर्ण नाटक प्रस्तुत किये गये। इसलिए राजनीतिक अर्थशास्त्र अपने सारे लौकिक तथा संवेदनशील रूप के बावजूद एक सच्चा नैतिक विज्ञान, तमाम विज्ञानों में सबसे अधिक नैतिक है। उसकी प्रमुख प्रस्थापना है आत्म-त्याग, जीवन का, सारी मानवसुलभ आवश्यकताओं का त्याग। तुम जितना कम खाओगे, जितना कम पिओगे, जितनी कम किताबें ख़रीदोगे, थिएटर, नृत्यगृह, रेस्तराँ में जितना कम जाओगे, जितना कम सोचोगे, जितना कम प्यार करोगे, जितना कम चिन्तन करोगे, जितना कम गाओगे, जितनी कम चित्रकारिता करोगे, जितनी कम पट्टेबाज़ी करोगे, आदि, उतना ज्यादा *बचाओगे*—तुम्हारा ख़ज़ाना उतना *ज्यादा* बढ़ जायेगा, जिसे न तो कीड़े खा सकेंगे और जिस पर न ज़ंग लग सकेगा—यह है तुम्हारी *पूँजी*।

– कार्ल मार्क्स, '1844 की आर्थिक एवं दार्शनिक पाण्डुलिपियाँ

विश्व पूँजीवाद के दुर्गों में हलचल, अन्तःपुरों में बेचैनियाँ !

विश्व सर्वहारा को अपनी कतारबन्दियाँ तेज करनी होंगी !!

निश्चय ही नयी सदी मेहनतकशों की सदी होगी!

नये साल की शुरुआत के साथ ही इक्कीसवीं सदी ने एक कदम और आगे बढ़ा दिया है। छह सालाना कदम आगे बढ़ा चुकी यह सदी अब तक ऐसी युगपरिवर्तनकारी सामाजिक हलचलों की गवाह नहीं बन सकी है जिनके आधार पर एक आम आदमी मानवता के बेहतर भविष्य के सपने साफ-साफ देख सके। सरसरी नजर से देखने पर दिखायी यही दे रहा है कि बीते साल भी दुनिया के साम्राज्यवादी-पूँजीवादी हुक्मरान मेहनतकश जनता पर भूमण्डलीकरण का अपना एजेण्डा थोपने में कामयाब रहे हैं। हालाँकि दुनिया में जगह-जगह छिटपुट रूप में, जनता की प्रतिरोधी कार्रवाइयाँ जारी हैं लेकिन विश्वस्तर पर जनमुक्ति संघर्ष अभी निर्णायक बढ़त लेता हुआ नहीं दिखायी दे रहा है। क्रान्ति की लहर पर अभी भी प्रतिक्रान्ति की लहर ही हावी दीख रही है। फिर ऊपर दिखायी पड़ने वाली इस सच्चाई की अन्दरूनी तहों में वे कौन से बीज पल रहे हैं जिनके आधार पर यह दावा दुहराया जा सके कि नयी सदी मेहनतकशों की सदी होगी। उम्मीद की किरणें आखिर कहाँ है, जिनके आधार पर हम पूरे भरोसे के साथ कह सकें कि 'उस पार है उम्मीदों और उजास की पूरी एक दुनिया, अँधेरा तो सिर्फ देहरी पर है।'

अगर दुनिया के पैमाने पर दिखायी पड़ने वाली सच्चाइयों की ही बात करें तो यह भी दिखायी दे जायेगा कि विश्व-पूँजीवाद की तथाकथित विजययात्रा पिछले साल भी निष्कण्टक नहीं रही है। साम्राज्यवादी कब्जावरों के खिलाफ इराकी जनता का बहादुराना प्रतिरोध युद्ध न केवल जारी है वरन और तेज होता गया है। अफगानिस्तान में साम्राज्यवादियों की कठपुतली हामिद करजई सरकार काबुल के बाहर अपनी सत्ता की पकड़ कायम रखने में अभी तक कामयाब नहीं हो सकी है। साल बीतते-बीतते पेरिस के उपनगरों में नौजवानों की बगावत की जो आग भड़क उठी उसने फ्रांसीसी ही नहीं समूचे यूरोपीय-अमेरिकी साम्राज्यवादियों के होश उड़ा दिये। उधर अमेरिका के ऐन पिछवाड़े, लैटिन अमेरिकी देशों की राजनीतिक फिजां में जो बदलाव हो रहे हैं उसने इस क्षेत्र के शक्ति-सन्तुलन को बुरी तरह हिलाकर रख दिया है। अब तक अकेले फिदेल कास्त्रो ही लैटिन अमेरिका में अमेरिकी हुक्मरानों की आँखों की किरकिरी बने हुए थे लेकिन वेनेजुएला, इक्वेडोर और उरुग्वे में साम्राज्यवाद विरोधी तेवर वाली सरकारों के सत्तासीन होने के बाद अब बोलीविया में भी ईवो मोरालेस के शपथ ग्रहण से इस क्षेत्र में अमेरिकी मंसूबों की राह में एक और रोड़ा आ खड़ा हुआ है। खुद अमेरिका के भीतर भी बुश मण्डली की नीतियों के खिलाफ जनअसन्तोष व्यापक रूप से सड़कों पर प्रकट हो रहा है। खासकर बुश की इराक नीति और कैटरीना तूफान से निबटने में संघीय सरकार की नस्लवादी आपराधिक अनदेखी के खिलाफ लोगों में व्यापक गुस्सा है। हजारों की तादाद में स्कूली छात्रों तक ने सड़कों पर प्रदर्शन किये हैं। इन सबसे अमेरिकी सत्ता प्रतिष्ठानों के भीतर भीषण बेचैनी फैली हुई है।

यह सब भी दिखायी पड़ने वाली सच्चाई का एक दूसरा पहलू है। जिस तरह सतह की सच्चाइयों को देखकर विश्व पूँजीवाद की हालिया विजयों को उसकी अन्तिम विजय नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार सच्चाई के इस दूसरे दिखायी पड़ने वाले पहलू के आधार पर इस अति उत्साही नतीजे पर नहीं पहुँचा जाना चाहिए कि विश्व स्तर पर क्रान्ति की लहर के एक बार फिर से प्रतिक्रान्ति की लहर पर हावी हो जाने की अपरिहार्यता अब आसन्नता के करीब पहुँच चुकी है।

विश्वव्यापी उलटाव की जो लहर विगत सदी के आखिरी दशकों में बहनी शुरू हुई थी उसे थमना ही है और एक बार फिर नये सिरे से क्रान्ति की लहर को उठना ही है, यह ऐतिहासिक अपरिहार्यता है। विश्व पूँजी के दुर्गों पर विश्व सर्वहारा की नयी कतारबन्दियाँ नये सिरे से धावा बोलेंगी ही, इसे टाला नहीं जा सकता। लेकिन इस ऐतिहासिक सच को बिल्कुल हमारी आँखों के सामने घटित होते देखने की घड़ी बिलकुल करीब आ गयी है ऐसा भी नहीं है। यह थोथा आशावाद होगा। ऐसा मान लेने पर न तो हम अपनी चुनौतियों की ठीक से पहचान कर पायेंगे और न ही अपनी जरूरी तैयारियों के काम को बखूबी अंजाम दे पायेंगे। इसलिए मेहनतकशों के हरावलों को अपनी वैज्ञानिक विश्व दृष्टि और इतिहास दृष्टि पर कमान रखते हुए न तो निराशा की गहराइयों में डूबने की जरूरत है और न ही थोथे आशावाद के बुलबुलों के सहारे बहने की कोशिश करनी चाहिए, क्योंकि इस कोशिश का अंजाम भी अन्ततः निराशा की और अधिक गहरी गर्त में डूबना ही होगा।

मेहनतकशों के सच्चे हिरावलों को अपनी क्रान्तिकारी विचारधारा की भौतिकवादी विश्वदृष्टि और द्वंद्वात्मक पद्धति को लागू करते हुए सतह पर दिखायी पड़ने वाले इन परस्पर विरोधी पहलुओं—एक ओर विश्व पूँजीवाद का तथाकथित विजयाभियान और दूसरी और विश्वव्यापी जनप्रतिरोध की कतारबन्दियाँ—की अन्दरूनी तहों में पैठकर आज के समय और भविष्य चुँधियाये बिना वस्तुपरक ढंग से छानबीन की जाये तो हमें साफ दिखायी दे जायेगा कि मूलभूत संकट जस-का-तस बरकरार है। सोवियत खेमे के विघटन के बाद साम्राज्यवादी पूँजी को निवेश के जो नये क्षेत्र और बाजारों के विस्तार के जो नये अवसर हासिल हुए थे वे खुद पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के बुनियादी तर्कों से ही उसके संकटों के समाधान नहीं बल्कि नये दौर के संकटों के कारण बनने लगे हैं। साम्राज्यवादी पूँजी का संकट पूँजी के अम्बार का संकट है और तीसरी दुनिया के देशों के सस्ते श्रम को निचोड़कर जो अतिलाभ कमाया जा रहा है वह इस संकट को और बढ़ाता ही जा रहा है। श्रम बाजार में सस्ते दामों पर श्रम खरीदने की होड़ मज़दूर आबादी को अधिकाधिक कंगाल बनाती जा रही है। नतीजतन उपभोक्ता मालों का बाजार उस तेजी के साथ नहीं बढ़ा रहा है जितनी तेजी के साथ उत्पादन। यही कारण है कि निरन्तर जारी युद्धों के जरिये साम्राज्यवादी एक ओर उत्पादन और उत्पादक शक्तियों के विनाश में जुटे हुए हैं दूसरी ओर अधिकाधिक गैर उत्पादक क्षेत्रों—शेयर, बीमा, मनोरंजन-सूचना उद्योग आदि क्षेत्रों में पूँजीनिवेश की मात्रा बढ़ती जा रही है। यह विश्व पूँजीवाद के जवानी की ओर लौटने का नहीं बल्कि उसकी जराग्रस्तता को, उसकी बढ़ती परजीविता और ह्रासोन्मुखता का ही सूचक है। विश्व पूँजीवाद की आन्तरिक गतिकी को न देखकर उसके ऊपरी लक्षणों को देखकर शक्तिमत्ता बढ़ने की बातें करना क्रान्तिकारी सामाजिक विज्ञान की समझ न रखने वाले व्यक्तियों के लिये तो क्षम्य है लेकिन मेहनतकशों के सच्चे हरावलों के लिए कतई नहीं।

विश्व पूँजीवाद का यह आर्थिक संकट खुद साम्राज्यवादी देशों के भीतर राजनीतिक-सामाजिक संकटों के रूप में भी प्रकट हो रहा है। इराक पर अमेरिकी हमले और कब्जे के खिलाफ अमेरिकी जनता का असन्तोष व्यापक होता जा रहा है। शुरू में जो असन्तोष मुख्यतः विश्वविद्यालयों-कॉलेजों के वामपन्थी प्रोफेसरों व छात्रों के एक छोटे समूह और युद्ध विरोधी शान्ति समर्थक कार्यकर्ताओं तक सीमित था वह अब व्यापक जनविरोध की शक्ल लेता जा रहा है। इराक पर कब्जा कायम रखने के लिए अमेरिका को जो सैनिक क्षति उठानी पड़ रही है केवल वही इस जनाक्रोश का कारण नहीं है, बल्कि वह इस कारण भी है कि जिस भारी मात्रा में धन खर्च करना पड़ रहा है उसका खामियाजा आम अमेरिकी नागरिकों को भी भुगतना पड़ रहा है। जनता पर नये टैक्सों का बोझ बढ़ रहा है, नागरिक सुविधाओं के मदों में कटौतियाँ हो रही हैं। यहाँ तक कि राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन के खर्चों तक में कटौतियाँ करनी पड़ीं जिसका नतीजा कैटरीना तूफान से हुई तबाही में सामने आया। अमेरिकी उद्योगों में छँटनी-तालाबन्दी भी जोरों पर है जिससे बेरोजगारों की तादाद भी बढ़ती जा रही है। इसके फलस्वरूप जो सामाजिक असन्तोष पैदा हो रहा है वह सड़कों पर व्यापक रूप में प्रकट हो रहा है। नतीजतन बुश को इराक पर हमले का औचित्य सिद्ध करने के लिए खुदा की शरण लेनी पड़ी। पिछले दिनों उसने बयान दिया कि इराक पर हमला 'ईश्वर की मर्जी' थी। इराक के बारे में रणनीति के सवाल पर अमेरिकी सत्ताधारियों में मतभेद भी

(पेज 11 पर जारी)

साम्राज्यवाद-पूँजीवाद के मौजूदा संकट अन्तकालिक हैं!

मज़दूर क्रान्तियों के पहले दौर की असफलता के बाद इतिहास समाजवादी क्रान्तियों के दूसरे संस्करणों की तैयारी कर रहा है!

इतिहास का यह रास्ता भारत जैसे देशों से ही होकर जायेगा!!

भारतीय क्रान्ति को विश्व मज़दूर क्रान्ति का एक प्रकाश-स्तम्भ बनाओ!

एक नये सर्वहारा नवजागरण का बिगुल बजाओ!

एक नये सर्वहारा प्रबोधन की मशाल जलाओ!!

एक नई सर्वहारा क्रान्ति की तैयारी में जुट जाओ!!!

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंगः कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादकः डा. दूधनाथ, मुकुल • सम्पादकीय पताः 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 • सम्पादकीय उपकार्यालयः जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ